




हिन्द पॉकेट बुक्स प्राइवेट लिमिटेड
जी० टी० रोड, शाहदरा, दिल्ली-३२



पत्थर युग के दो बुत

आचार्य चतुरसेन

Mahesh Suroop Bhatnagar

V. 1. 1. 20, 21/22

27-28/29, 30, 31, 32, 33, 34, 35, 36, 37, 38, 39, 40, 41, 42, 43, 44, 45, 46, 47, 48, 49, 50, 51, 52, 53, 54, 55, 56, 57, 58, 59, 60, 61, 62, 63, 64, 65, 66, 67, 68, 69, 70, 71, 72, 73, 74, 75, 76, 77, 78, 79, 80, 81, 82, 83, 84, 85, 86, 87, 88, 89, 90, 91, 92, 93, 94, 95, 96, 97, 98, 99, 100, 101, 102, 103, 104, 105, 106, 107, 108, 109, 110, 111, 112, 113, 114, 115, 116, 117, 118, 119, 120, 121, 122, 123, 124, 125, 126, 127, 128, 129, 130, 131, 132, 133, 134, 135, 136, 137, 138, 139, 140, 141, 142, 143, 144, 145, 146, 147, 148, 149, 150, 151, 152, 153, 154, 155, 156, 157, 158, 159, 160, 161, 162, 163, 164, 165, 166, 167, 168, 169, 170, 171, 172, 173, 174, 175, 176, 177, 178, 179, 180, 181, 182, 183, 184, 185, 186, 187, 188, 189, 190, 191, 192, 193, 194, 195, 196, 197, 198, 199, 200, 201, 202, 203, 204, 205, 206, 207, 208, 209, 210, 211, 212, 213, 214, 215, 216, 217, 218, 219, 220, 221, 222, 223, 224, 225, 226, 227, 228, 229, 230, 231, 232, 233, 234, 235, 236, 237, 238, 239, 240, 241, 242, 243, 244, 245, 246, 247, 248, 249, 250, 251, 252, 253, 254, 255, 256, 257, 258, 259, 260, 261, 262, 263, 264, 265, 266, 267, 268, 269, 270, 271, 272, 273, 274, 275, 276, 277, 278, 279, 280, 281, 282, 283, 284, 285, 286, 287, 288, 289, 290, 291, 292, 293, 294, 295, 296, 297, 298, 299, 300, 301, 302, 303, 304, 305, 306, 307, 308, 309, 310, 311, 312, 313, 314, 315, 316, 317, 318, 319, 320, 321, 322, 323, 324, 325, 326, 327, 328, 329, 330, 331, 332, 333, 334, 335, 336, 337, 338, 339, 340, 341, 342, 343, 344, 345, 346, 347, 348, 349, 350, 351, 352, 353, 354, 355, 356, 357, 358, 359, 360, 361, 362, 363, 364, 365, 366, 367, 368, 369, 370, 371, 372, 373, 374, 375, 376, 377, 378, 379, 380, 381, 382, 383, 384, 385, 386, 387, 388, 389, 390, 391, 392, 393, 394, 395, 396, 397, 398, 399, 400, 401, 402, 403, 404, 405, 406, 407, 408, 409, 410, 411, 412, 413, 414, 415, 416, 417, 418, 419, 420, 421, 422, 423, 424, 425, 426, 427, 428, 429, 430, 431, 432, 433, 434, 435, 436, 437, 438, 439, 440, 441, 442, 443, 444, 445, 446, 447, 448, 449, 450, 451, 452, 453, 454, 455, 456, 457, 458, 459, 460, 461, 462, 463, 464, 465, 466, 467, 468, 469, 470, 471, 472, 473, 474, 475, 476, 477, 478, 479, 480, 481, 482, 483, 484, 485, 486, 487, 488, 489, 490, 491, 492, 493, 494, 495, 496, 497, 498, 499, 500, 501, 502, 503, 504, 505, 506, 507, 508, 509, 510, 511, 512, 513, 514, 515, 516, 517, 518, 519, 520, 521, 522, 523, 524, 525, 526, 527, 528, 529, 530, 531, 532, 533, 534, 535, 536, 537, 538, 539, 540, 541, 542, 543, 544, 545, 546, 547, 548, 549, 550, 551, 552, 553, 554, 555, 556, 557, 558, 559, 560, 561, 562, 563, 564, 565, 566, 567, 568, 569, 570, 571, 572, 573, 574, 575, 576, 577, 578, 579, 580, 581, 582, 583, 584, 585, 586, 587, 588, 589, 590, 591, 592, 593, 594, 595, 596, 597, 598, 599, 600, 601, 602, 603, 604, 605, 606, 607, 608, 609, 610, 611, 612, 613, 614, 615, 616, 617, 618, 619, 620, 621, 622, 623, 624, 625, 626, 627, 628, 629, 630, 631, 632, 633, 634, 635, 636, 637, 638, 639, 640, 641, 642, 643, 644, 645, 646, 647, 648, 649, 650, 651, 652, 653, 654, 655, 656, 657, 658, 659, 660, 661, 662, 663, 664, 665, 666, 667, 668, 669, 670, 671, 672, 673, 674, 675, 676, 677, 678, 679, 680, 681, 682, 683, 684, 685, 686, 687, 688, 689, 690, 691, 692, 693, 694, 695, 696, 697, 698, 699, 700, 701, 702, 703, 704, 705, 706, 707, 708, 709, 710, 711, 712, 713, 714, 715, 716, 717, 718, 719, 720, 721, 722, 723, 724, 725, 726, 727, 728, 729, 730, 731, 732, 733, 734, 735, 736, 737, 738, 739, 740, 741, 742, 743, 744, 745, 746, 747, 748, 749, 750, 751, 752, 753, 754, 755, 756, 757, 758, 759, 760, 761, 762, 763, 764, 765, 766, 767, 768, 769, 770, 771, 772, 773, 774, 775, 776, 777, 778, 779, 780, 781, 782, 783, 784, 785, 786, 787, 788, 789, 790, 791, 792, 793, 794, 795, 796, 797, 798, 799, 800, 801, 802, 803, 804, 805, 806, 807, 808, 809, 810, 811, 812, 813, 814, 815, 816, 817, 818, 819, 820, 821, 822, 823, 824, 825, 826, 827, 828, 829, 830, 831, 832, 833, 834, 835, 836, 837, 838, 839, 840, 841, 842, 843, 844, 845, 846, 847, 848, 849, 850, 851, 852, 853, 854, 855, 856, 857, 858, 859, 860, 861, 862, 863, 864, 865, 866, 867, 868, 869, 870, 871, 872, 873, 874, 875, 876, 877, 878, 879, 880, 881, 882, 883, 884, 885, 886, 887, 888, 889, 890, 891, 892, 893, 894, 895, 896, 897, 898, 899, 900, 901, 902, 903, 904, 905, 906, 907, 908, 909, 910, 911, 912, 913, 914, 915, 916, 917, 918, 919, 920, 921, 922, 923, 924, 925, 926, 927, 928, 929, 930, 931, 932, 933, 934, 935, 936, 937, 938, 939, 940, 941, 942, 943, 944, 945, 946, 947, 948, 949, 950, 951, 952, 953, 954, 955, 956, 957, 958, 959, 960, 961, 962, 963, 964, 965, 966, 967, 968, 969, 970, 971, 972, 973, 974, 975, 976, 977, 978, 979, 980, 981, 982, 983, 984, 985, 986, 987, 988, 989, 990, 991, 992, 993, 994, 995, 996, 997, 998, 999, 1000

RANI BAZAR, BIKANER

© कम्पन डिजिटली बनारस



पुस्तक : श्री कृष्ण

पत्थर-गुग के दो बुत मुझे मिले हैं—
 एक घोरत, दूसरा मर्द
 जमाने ने इन्हें सम्यता के बड़े-बड़े लिबास पहनाए
 इन्हें राजाया-संवारा, सिखाया-पढ़ाया
 जमाना आगे बढ़ता गया
 और वह सम्यता के शिखर पर जा बैठा
 पर ये दोनों बुत अपने लिबास के भीतर भाज भी
 वैसे ही पत्थर-गुग के बुत हैं
 इनमें एक बाल बराबर भी अन्तर नहीं पड़ा है
 एक है घोरत और दूसरा है मर्द—

कदा कदाई विग कदर खरीयेवा' माविन हूण
सगट दिवते, तिनही घटना घालिती मसज्जा पा के

पत्थर-युग के दो बुत

रेखा

घान यह उनका पावसा 'बर्बडे' है, पारो के बाढ़। जिनमें से वे
अधन लाल से ही घर पर लट्ठिर रहे—बहुने ही बर्बडे घर, जो पावसा
हमारे दिवाले के पाव मशीन बाढ़ ही पड़ा था। उस समय तक तो मेरे
मन का मनोवर्धन भी नहीं मिली थी। उस समय मेरी धातु
उत्पत्ति घर में थी और उनकी वस्ती घर में थी। वे बेगड़ में उन
समय किन सम्भावना में उपस्थित थे। उनका कपड़ाधार पेहरा, मेघ-
गर्जन-सा स्वर-ध्वज बलिष्ठ और मरीच, बड़ी-बड़ी उभरी हुई धाने
उड़ी हुई नाक और घोर-गम्भीर भाव-भविष्य सब ऐसी थी कि मैं उन्हें
देवते ही सहम जाती थी। बालचीत का उनका दग हाकिमाना था। सब
बातों में जैसे वे साजा ही देने थे। नीकर-बाकर, चपरासियों की—पी०
ग० मेन्नेटरी और दपनर के दूसरे कर्मचारियों की एक फौज सदैव उन-
के पीछे लगी रहती थी। एक के बाद दूसरी फाइलों के घट्टर लेकर उन-
के दपनर के कर्मचारीगण छले, गड़मे-गड़मे-से उनकी कुर्सी के पीछे
घट्टर में छड़े होने, उन्हें हस्ताक्षर कराते। हस्ताक्षर करने-करते वे
उनमें बीच-बीच में कुछ प्रश्न करते। प्रश्नों का उत्तर देते हुए उनके पी०
ग० मेन्नेटरी की उवाच लट्ठिर जाती। उनके चेहरे से मेघ धिलानर
जवाब देने का किसीकी माहुर न होता—बहुधा उनमें से घनेचो के
चेहरे पर पसीना था जाता। चपरासी पत्थर की भूति की भांति पड़ी
सबल उनके सनेन की प्रतीक्षा में लट्ठिर रहते। यह सब मैं देखती—घोर
देमकन मैं भी उन्नी भाति बड़-स्तब्ध रह जाती। उनके निकट जाने,
उनमें बात करने में मुझे डर लगता था। मैं घबरा जाती थी। क्यों न
घबराती भना ? मैं तो एक साधारण गृहस्थ की कन्या हूँ। मेरे पिता
के घर पर तो केवल एक ही नोकर घर का सब काम-बन्धा करता था।

पिताजी उसके साथ परिवार के एक सदस्य की भांति ही व्यवहार करते थे। वह हमारा पुराना नौकर था। मुझे उसने बचपन में गोद लिया था। वह मुझे 'चिटिया रानी' कहता था। विवाह होने के बाद तक भी वह इसी तरह कहता रहा। मैं उसे 'दादा' कहती थी। मां उसे बहुत मानती थीं। और वह हमारे सारे ही दुःख-सुख में सम्मिलित था। शिता की मैं इकलौती बेटा हूँ। तीन माई हुए, और जाते रहे। मां उनकी याद कर-करके रोती रही। बहुत बार उन्होंने मुझे छाती से लगाकर मेरे भाइयों की स्मृति में आसू बहाए। बर्दाश्त इसीसे माता और पिता का ममूचा प्यार मुझ धकेली पर उमड़ गया था। इतना प्यार भी किसी-को मिल सकता है, यह मैं तब नहीं, पर अब सोचती हूँ—उमसे दूर होकर, उनकी स्नेहमयी गोद से लीनी जाकर।

चारम्भ मे पिताजी ने मुझे स्वयं ही पढ़ाया। उस पढ़ाने में कितना दुखार था! ये बचपन की बातें हैं पर उन्हें भूलो नहीं हूँ। भूल सकती भी नहीं हूँ। इसके बाद स्कूल-नालेख, कालेज की सहेलियाँ, विवाह के पूर्व का वह निर्दुःख जीवन, अब बीजब विदा हो रहा था और जीवन घाँघ-भिचोनी के लेल लेज रहा था, गुदगुदाता था, तिलतिलाता था, घूना था, पर दीखना न था। कैसा मनमोहक था वह लेज! कितना मन को भाता था! कितना हँसनी थी मैं, और कितनी बातें करनी थी—घाँघ मोचनी हूँ तो सोचती ही रह जाती हूँ। बाल-बाल पर मचलनी, मां की गोद में गिर जानी, जैसे अभी भी मैं एक दूधपीनी बच्ची थी। और मां भी अभी जैसे मुझे बँसी ही दूधपीती बच्ची समझती थीं। ऐसा दुखार करनी थी। मुझे तो याद नहीं, मैंने कभी मां का कोई अपराध किया हो, या मां ने मेरी कोई भूल-भुल अपराध मानी हो। और पिता-भी, बेबारे देते निरीह-निष्ठा—ज्यों-ज्यों मैं बड़ी होती गई, मेरे अनु-मन होने गए। उनपर मैं निर्दुःख शासन चलाती, जो चाहनी करा लेती। मेरी किसी इच्छा से वे बाधक न हुए। मेरी हर बृष्टि पर वे हँस देते। मेरे हर हड को वे घाँघों पर लेते। सपानी होने पर मैं मां के हाथ पर के काँधों में हाथ बँटानी। पिताजी के लिए एकाध मन्की अपने हाथ से बकर बनाती। पिताजी मुझे 'राजा' के नाम से सम्बोधन करते थे। वे मुझे चुनी नहीं, चुन मानने थे। उनके मुह से 'राजा' सम्बोधन

कितना प्यारा लगता था मुझे ! धात्र भी मेरे कानों में बहु-प्यारा संशोध-
गूँजता रहता है । चाय को तनिक देर हुई कि मितात्री बहुते—रा-
बेटा, धात्र हुये चाय नहीं मिली । धीरे में घर-घाँघन में अपनी बरत
हूँसी बघेरती जाती उनके पास चाय का प्याला लेकर ।

ये दिन मेरी घाँघों में घब भी बस रहे हैं । सभी केवल पाँच
बरस तो हुए । मेरे रक्त की प्रत्येक बूँद में रमे हुए हैं ये दिन, भला भु-
कंसे सकती हूँ ! रत्न-मुझे इस अवलगत बीमर में बड़े-सकर जैसे
भिरपरिचित प्रिय दिवस बले गए, जैसे ही बले गए मेरे वे माता-पि-
—मेरी घाँघा के घाँघार धीरे मेरे जीवन के निर्माता, प्रेम, प्याय, र-
धीरे आत्मदान के महादाता ।

उस घर में धीरे इस घर में जला क्या समता ? उस जीवन में
इस जीवन में तो जमीन-घासमान का अन्तर है । सब तो मैंने अपने ।
इस जीवन का धम्यस्त बना लिया है, सब कुछ परब गया है; पर त
तो सब कुछ परावा-सा, घटपटा-सा, भपरिचित-सा, पघाह-सा लग-
ता ।

हाँ, मैं उनकी बात कह रही थी । यही बात उनके सम्बन्ध में थी
बहुत साहस करने पर भी मैं उनके निकटतम न हो सकी, बहुत रि-
क्त । ऐसा प्रतीत होता था—एक पर्वत मेरे सम्मुख जडा है, कंठे इ-
पर चरुनी । मेरे नन्हे-नन्हे पैर घापल हो जाएंगे । कितना ऊँचा
कितना बडा, कितना कठोर है यह पर्वत ! फिर भी सुशोभन है, दस-
नीय है, धम्य है । ऐसा ही तो दुःख था उनका व्यक्तित्व । पर वे को-
है, यह एक बात मेरे मन में दिन में ली बार उठती थी—वे घाँघों के
सामने रहने के तब भी, धीरे नहीं रहते के तब भी । यही बात कां-
मुझसे कही थी, जब उन्होंने घाँघों से अपनी छाती तर कर ली है ।
धीरे वही एक बात कहकर मुझे उनके साथ भेज दिया था । १९४६,
यह तो धीरे में समझ गई, जान गई, किन्तु क्यों हूँ यह न समझ गई—

मरना नरक का भी छोटा कमरा है। नरक में जाने वाली — प्राणों की भी, मरना है। लेकिन भी शांत दिमाग़ ब्रह्म को जानना मरना — मरना कुछ है। संप्रसाद हुआ हो नहीं है, अभिन्न है। ये सब हैं छोटी चीजें हैं।

उन्होंने यह चाली बार मुझे पत्नी बर्तानु कराई। मैं हमेशा मेरे
छात्रों के साथ था। वह छात्रा प्रथम सर्व-सर्व सुखी महिला थी, यह मुझे
मेरा प्रतीत हुआ जैसे वह हमेशा ही होगी दुर्लभ महिला के मुझे उम्मीद-
का उन दुर्लभों के वर्ग की उम्मीद वाली वह मैं ही हूँ। जोनि और
आनन्द ने मुझे भ्रम भोगा था। मैं हूँ जैसे लक्ष्मी। वह मुझे
जैसे वह छोटी-सी निरीह महिला कहती हैं। नारी की महिला के जैसे
मुझे दर्शाते हैं। मैंने उस वर्ग के उम्मीद निम्न यह मेरे लिए, भाग
ममता मुझ-मा, छोटी-मा लग रहा था। और हमारे साथ मैंने देखा
उनका स्वयंसेवक हुआ, उम्मीद छोड़कर, उम्मीद, उम्मीद का और
प्यार का प्रथम उम्मीद, विनाश और भोग का ऐश्वर्य को घर में
पारों और विवरण कह रहा था, भविष्य में मैंने देखा था।
निर्बन्धनीय था वह। मैं हूँ नहीं थी; किन्तु के ? के बिन्दु के रहने के,
आनन्द का, प्यार का, उम्मीद का बहुत प्रयत्न, पत्नी निर्भर की भाँति
कर-कर-कर-कर।

वह सब उनके उस रूप में भिन्न था, जो मैंने जाने पर देखा था, जिसने मुझे भयभीत कर दिया था। मैंने जाना—उनकी वह महत्ता, गान और प्रभाव औरों के लिए है, वेरे लिए प्यार है, हास्य है, आविर्गमन है, चुम्बन है, आत्मार्पण है। यह देनकर मेरी भीति नाश गई। अश्विनी दृष्टि उदय हुई। प्यार का एक घंटुर उठा और देनने ही देनने मुझे—मेरे जाने की अतिक्रान्त कर गया। भूत गई मैं घरने को—घरने तारी-जीवन को, घरने तन को, मन की, घरनेपन को। रह गई वही वक्षस्व आधारशिला, अगिष्ठ बाहुओं का वह आवेष्टन, चुम्बन का वह महादान। और मैं गरिमा में डूब गई। कही गया वह दीपक व मान-लीला, माना पिता का वह साह-प्यार, जिने जीवन का घर नष्ट आधार समझनी रही। अब तो ऐसा लग रहा था—बहु सब तो एक स्वप्न था—वास्तविक जीवन तो अब आरम्भ हुआ है; इसील वर्ष की वस में। घरने ही भीतर मैंने घरने को नया जन्म आरम्भ करते देखा—इस

नये जन्म के बाद मेरा जीवन भी महीन हो गया। अब इसकी उम्र सतीस तीसव से भला क्या गुनना हो सकती थी।

दुर्भाग्य ही बहना चाहिए कि इस बीच मेरे माता और पिता स्वर्ग-वासी हो गए। पर अपने सौभाग्य के ऐवज मैंने मेरी मददहोज थी कि यह दुर्भाग्य मुझे कुछ खला ही नहीं। यह तो मैंने समझा कि कुछ मेरा धनना गो गया, पर उससे मेरी कुछ हानि हुई, ऐसा तो मैंने समझा ही नहीं। परन्तु वही मेरी बुद्धि पर, मेरी स्वायत्तता पर, मेरी मूर्खता पर। मैं ऐसी मजबूती हो गई कि माता-पिता की उमरोंद को एक-बागो ही भूल गई - किमने पूरे दशमीय बरस तक अपने वारसत्व से मुझे जीवन व राजमिहामन पर ला बिठाया था। हा, मैं रोई थी, पर उन्होंने मुझे धनिक गोने नहीं दिया, मेरे सामू-भरे नेत्रों पर चुम्बन के अननितन अब धनित करके पीली धातों को सूखा कर दिया। मैंने देना, निनिक का सहाय छोकर मुझे अब विशाल बटवृक्ष का सहारा मिल गया। समार की सब बुद्धियों की भांति मैं भी मूड सहमाम्यता की गिहार बन गई। माता-पिता की मैं भूलवी धसी गई।

घोर अब छाया उनका कम्पदिन। उनका यह कलीकवां जन्मदिन था। पर मेरे लिए बहता ही था। सभी बाब ही महीने तो मुझे ब्याह-का थाए हुए थे। इसी बीच प्यार के मुन और माता-पिता के बिछोह के हुन ने मुझे भरभोर डाला था। मैं कुछ सोई-सोई-सी रहती थी। वे धानिन जाने तो मैं घर मे सोने-जागते, उन्हीका स्वप्न देखती। वही धानिनन, वही चुम्बन वही बखहास पहाड़ को हिला देने वाला, वही बख-बख और प्यार की निनवन एव धनीमिद्वय धानन का चम्प धादान-प्रदान। मेरा मूडम शरीर मंडराता रहना उनकी धानन-मूर्ति के चारों ओर, दुनिया मे ओर भी वही कुछ है, मैं नहीं जानती थी, नहीं देखती थी। मेरे शरीर के भीतर मेरे रक्त की प्रत्येक बूद मे उनकी धमनीय मूर्ति धसी थी, ओर मेरे नेत्रों के बाहर सूरज के प्रकाश मे सुशोभित रणीन बिंदव मे तथा मवल चन्द्र-ज्योत्स्ना की उज्ज्वल छटा मे वे ही दीन पड़ते थे—केवल वे ही।

ओर जब वे सशरीर मेरे सामने धा लड़े होने मे तब जैसे बिंदव मे मसरप लों मे बिछरी हुई उनकी मूर्तियों सिमटकर एकीभूत हो गईं

हों—ऐसा मुझे मान होना था। क्या कहूँ मैं जानती हूँ, मैं दीवानी हो गई थी। मैं दुःख-हर्ष को बेटी थी। जिस भाग्यशो को कभी प्रेम का ऐसा मयानक कुभार नडा होगा। जिस नारी ने प्रेम का घर उमगन उमगट कर देना होगा।

एक दिन एकमात्र ही उन्होंने साकर मुझसे कहा, “घात्र मेरा बर्षं है।” और पांच बी छाणों के मोटों का गदुर मेरे हाथ में दया दिया। मुझसे भी छाणों के नाम को, जैसा ही क नमको व्यवस्था करना और एक छाणों की नारी बनने लिए मे जाना।” के नो इतना कहकर और एक मुझसे लेकर छाणों के जाने गए। और मैं उन मोटों के गदुर को हाथ में लिए बह बनी बेटी रही। क्या बर्षं, मेरी मयम में नहीं था रहा था। बचपन में मेरे माता-पिता मेरा जन्मदिन मनाने थे। मेरे लिए मिठाइयाँ छाणी थी, मये कपड़े छाने थे, पिपीना और सोगान छाणी थी, पर वे सब तो बचपन की जानें हैं। वे तो बच्चे नहीं हैं, फिर यह बर्षं के नाम मयाया जाएगा। परन्तु सीधे ही मेरी जन्म दूर हो गई। मन स्फूर्ति ने भर मया। तभी छाणों का बचपन का उमयिष्ठ हुआ। उमने कहा, “गाड़ी ने छाया हूँ। बलिय बाजार में जो-जो खरीदना है ले छाए।” और मैं न जाने क्या-क्या खरीद लाई। बचपन ने भी बहुत मदद की। मिठाइयाँ, नमकीन, कल, बिरुट, देन्डी, मुन्ने, पापड़ और न जाने क्या-क्या? कौन-कौन छाणों, यह मैं नहीं जानती थी। क्या होगा, यह भी नहीं जानती थी। पर ज्यों-ज्यों बौर्षं मैं खरीदती जाती थी, मेरा दिन उमय में हिलोरे सेता जाता था। मैंने एक भासमानी रंग की साड़ी भी खरीदी। बहुत मायापन्नी करनी पड़ी मुझे। न जाने उनकी पसन्द छाणों भी या नहीं। मैंने तो सब अपना छाया ही सो दिया था—उन्हींको भास से अपने को देखती थी। सादिया पसंद हो नहीं था रही थी। मन्त में बहुत-बहुत हिचकिचाहट के बाद एक साड़ी खरीदी और एक मफलर लिया उनके लिए भी। बचपन ने मैंने बहुत सलाह-मशवरा किया। बेचार बूझा ब्राह्मण था। और सब तोंकर-बाकर भासियाले मुझे ‘मेरा साहब’ कहते थे, पर यह बूझा ब्राह्मण मुझे ‘भाजी’ कहकर पुकारता था। बड़ा मला लगता था मुझे इसके मुँह से भाजी कहना। मुझे बाद छाता था—पिता के घर का

बूढ़ा नौकर रामू, जो मुझे 'बिटिया रानी' कहकर पुकारता था। मैंने
 पर के बड़े-बूढ़े की भाँति इस बाह्यण सेवक से कुछ सलाह-मसबरा
 करके एक-एक चीज सरीदी थी। फोन पर मैंने कहा—'मैंने देखा—
 हमर में इस बूढ़े चपरासी की राय को हमें ध्यान में रखना ही है। बहुत
 ही सामची खरोदकर मैं सोचूँ।'

बड़ी धूमधाम रही रामू की भूढ़े-बूढ़े की सेवा। एक गायक ने
 संगीत-गान किया। हंसी-मजाक, कुत्ते, 'साली-मीना' घर हुआ।
 मित्रों भी आई। पुरख भी आए। सबके साथ रामू की सेवा
 का आनन्द-प्रदान हुआ। आनन्द के एक-एक तैयारी-निराका मुझे
 दिने देखा।

घोरे-धीरे सब लोग जाने लगे। इस-इसकर बचाव में आते थे,
 सब सम्मानित पुरख-नभी मुझे बहुत मते लग रहे थे। बर्बडे का यह
 स्मोहार मेरे मानस-घटन पर पर कर गया। सब चले गए—पर उनके
 हुए अंतरंग मित्र भीतर के कमरे में अभी जमे बैठे थे। वहाँ उनका
 'ड्रिंक' चल रहा था। इस ड्रिंक से मैं पहले अपरिचित थी। शराब के
 पीते थे—यह मैं जान तो गई थी, पर शराब कैसे पी जाती है, यह न
 जानती थी। पर मेरे शराब नहीं पीते थे। बहुत दिन बाद पता चला
 कि विवाह से प्रथम पीते थे—विवाह के बाद घर में बन्द कर दिया
 था—बल्ब में आकर पीते थे। इन बातें महीनों में मैंने उन्हें एक बार
 भी मदहोश नहीं देखा था। शराब की सेवा महक प्रथम उनके मुँह से
 जाती थी; पर वह महक कंसी है, यह मैं नहीं जानती थी। शर्म के मारे
 पूछ भी न सकती थी। कभी-कभी मुझे सहन नहीं होती थी। फिर भी
 मैं अपनी स्थिति को नहीं प्रकट करती थी। निम्नु घाज मैंने देखा।
 सबके जाने पर उनके तीन-चार अन्तरंग मित्र भीने बैठे थे। मैं उस मंडली
 में नहीं गई। कोई स्त्री उस मंडली में न थी। सब पुरुष ही थे। वो वे
 मुझे बुलाकर अपने मित्रों से परिचय कराते थे। पर इस बात नहीं
 बुझाया। रात बीतती जा रही थी और मैं उनके पाँक में समा जाने को
 छटपटा रही थी। पर वह मंडली तो अभी बँटी थी। रामचरण चपरासी
 से—उसी बूढ़े बाह्यण से—मैंने पूछा, "वहाँ अब ये क्या कर रहे हैं ?
 खाना-पीना तो सबका अब का सत्तम हो चुका।" बूढ़ा चपरासी सब

मैं पचरा गई। रामचरण घोर एक लौकर ने उन्हें पलग प
पिटाया। लहरी के कुन्दे की भाँति वे बेहोश पलग पर पड़े हुए और
मास ले रहे थे। कभी शस्त्रकुट कुछ शब्द उनके मुँह से निकलने थे। पल
की पाटी पर बँटी मैं उनके गिर पर हाथ फेरती बँटी रोती रही, एकान्त
रात्रि में। लौकर-बाकर सब सोने चले गए। जागती मरने देव रही
थी, वचपन के सपने, मा-बाप के साह-प्यार के सपने, जानपने के सह
मेलों के सपने, फिर भ्याहू के घोर उसके बाद उनके सपने—प्यार के

हुनार में, भ्रान्त के घोर बहाड़ की उस ऊँची चोटी पर चढ़कर, जहाँ से दुनिया छोटी सीखी थी, उसके सपने । घन्तसू की भाँसें सपने देख रही थी और बाहर की भाँसें सावन-भाँसें की आँखें लगा रही थी । हाथ धक्का होगा ? यह क्या कहा हो गया ? — मैं झुक बनी यही सोच रही थी, रो रही थी । सोचनी रहो और फिर न जाने क्या सो गई ।

तुम्हें आपस सुनी तो देखा, वे ठठ थुके थे, बाथरूम से उठने गुन-गुनाने की परिवर्तित मधुर ध्वनि आ रही थी । मैं हटकर उठ बैठी । वे बाहर आए और हसत हुए मेरी ओर बढ़े । मेरे दोनों हाथ अपनी झुड़ी में भरकर उन्होंने प्रेम से कहा, ' गल गरी तबियत एकाएक खराब हो गई थी । है न ; घब डीक हू । तुमको सायद रात बहुत तकलीफ रही, है ? तुम्हारी भाँसें साफ हो रही हैं, क्या सोई नहीं ? '

मैं रोने लगी । रोते-रोते उनके वक्ष पर जा गिरी । हाथ मैं प्रभा गिनी रात की बात बता बहने लगा ! यह तो मेरे लिए प्रलय की रात थी—मेरे तो सभी सपने हवा हो गए थे । पर उनसे एक बात भी मुह से न कह सकी, रोती रही । उन्होंने प्यार किया, मेरे सिर पर हाथ फेरा । उदारता और प्यार का भरपूर वही हाथ ! वही स्पर्श ! उससे जैसे मेरे मुँह प्राण फिर से हरे होने लगे—जैसे सूखे झूल में हरी कोपलें निकल आई हो ।

वे मुझे बाथरूम में ले गए । मुह धुताया । फिर एक प्रकार से मुझे एक में भरकर बाथ की टेबल पर ले गए । रात क उम्माद का तो भय बिल्कुल मान भी न था । बगी पर्वत के समान महान और प्यार के मूलि-मान प्रवृत्त मेरे साथ बैठे हन-हसकर बानें कर रहे थे । घन्तन. मैं दु स्वप्न की भाँति उस रात की बात भूल ही गई ।

बहु दिन बीता गया । और दिन आए और गए । आते गए, जाते गए । बहुत आए और गए । बहुत नई बातें पुरानी हुईं । पुरानी नई हुईं । पर सारा एक दैत्य की भाँति मेरे मानस-नटल पर चढ़ बैठी । कैसी भयानक चीज है यह सारा ! क्यों पीछे हैं भला ये इसे ? बहुत मन को रोंका और आँखों पर एक दिन मैंने कह दिया, "क्यों पीछे हो तुम इस जहर की ? "

वे हसे । टाल गए । टालते ही गए । परन्तु घन्तसू सवाल-जवाब,

हुजबस बड़ी सो वे तिनक गए। उन्होंने कहा, “ऐसी बाहियान घोरत होतुम ! हर मान का जवाब तलब करली हो। मैं नहीं पसन्द करता ये सब बातें !”

बस, जैसे घांघी का एक बवंडर भाया और उस पहाड़ की चोटी पर से मुझे नीचे घरेल गया। अभी तक इतना साफ कलाम मैंने उनके मुह से नहीं सुना था। वे भी सायद यह ‘फीस’ करने लगे। नम्र होकर बोले, “सोसाइटी में यह सब करना पड़ता है डालिंग, तुम इन बातों का सोच-विचार न किया करो। इसके सिवाय इससे मेरी सेहूँ भी ठीक रहती है। चाकिस में मुझे कितना काम करना पड़ता है, कितनी बिम्मे-बारिमों मेरे किर पर हैं। ज़रा-सा सुगम न करूं तो बस मर ही मिटूं।”

वे सायद ठीक ही कहते हैं, यह सोचकर मैं चुप हो गई। पर मेरे मन में जो धोर बैठा सो बैठा। रात को जब वे क्लब से आते तो मैं सतरक दृष्टि से उनकी प्रत्येक हरकत को देखती। मेरी सदा की प्रसन्नता गायब हो जाती और मेरा मन खोज से भर जाता। वे भी यह बात समझ गए और मुझसे लिचे-लिचे रहने लगे। और धीरे मिथी में बांस की फाँस का प्रवेश हो गया। मेरे सोने का महल मलिन होने लगा। मेरा उल्लास बुझने लगा। मैं खोई-खोई-सी रहने लगी। मुझे ऐसा प्रतीत होने लगा—जैसे यह कम्बस्त पाराब एक व्यवधान बनकर हमारे बीच आ गई है। मैं चाहती थी कि मैं उनसे झगड़ा न करूं। पर जब वे धीरे धीरे से घर लौटने लगे। कभी-कभी घाघो-घाघी रात तक मुझे लिङ्की से मुँह दिए बैठा रहना पड़ता था; उनके लिए खाना लिए भूखी बैठी रहती थी। जब उनके मन में मेरे लिए वह सहानुभूति न थी। वे आते और मैं उदास और ठंडे दिल से खाने को कहती तो वे रुखे स्वर में कहते, ‘मैंने तुमसे कई बार कहा है, मेरी प्रतीया मत किया करो, खा-पी लिया करो। मैं यहाँ आ लेता हूँ। पर तुम सुनती हो नहीं।’ अता कैसे मुनू मैं ! मर्द बन जाऊँ ? घोरत का स्वभाव ही छोड़ दू !

वे यह कहकर सोने के कमरे में चले जाते और मैं बिना ही लाए-गिए एक ओर पड़ रहती। पाए दिन यही होता और कभी-कभी दो-दो दिन बात करने की मौकत न आती। बाकिर मैं कर्क क्या ? जाऊ भी कहाँ ? सोचू भी क्या ? जीवन तो बंध चुका। हृदय परकोच हो चुका।

घंन में हुंभी धीरे धींनुओं का गठबधन हो गया। मैं हुगनी भी, रीती भी। प्यार का दर्द अब मेरी बीमारी बन गया। पर इसका इलाज क्या था ?

फिर दूसरा कर्बड़े छाया, धीरे से पीच ली छाये मेरे हाथों में धमा-कर बस दिए। मैंने कहा, "मुनो," वे हने, कहा, "क्या ?"

"मुन्हारे हाथ ओटलो हूं। इस बार यहाँ टिक मत करना।"

"घम्टा !" कहकर वे तेजी से चम दिए। उनका इस तरह जाना, 'घम्टा' कहना मुझे कुछ आया नहीं— न जाने क्यों निमी प्रज्ञान भय के मेरा मन मसीम दिया। मैं बाज़ार गई, सब सामान लाई। मन में उछाह भी था, धीरे अब भी था। न जाने आज की रात कैसे बीतेगी ? विद्येन ज्ञान की सब बाँटें बाद आ रही थीं, धीरे में तो कतेजा जाँव रहा था। फिर भी मैं धाववत् सब तैयारी कर रही थी।

मेहमान जाने लगे पर उनका वही पता न था। मेरे दीर्घों के नीचे से धरती लिपक रही थी। लोग हस-हंसकर बधाइयाँ दे रहे थे, बुद्धन कर रहे थे। मुझे उनके साथ हंसना पसंद था, पर दिल मेरा रो रहा था। वह तो बिना दूधों की बरात थी। बड़ी देर में आए उनके प्रस्तारंग मित्र दिलीपकुमार। जाने कहकर उन्होंने सब मेहमानों की सम्बोधित करके कहा, "बन्धुमो धीरे कहनो, बड़े सेद की बात है कि एक परमावश्यक सरकारी काम में म्मस्त रहने के कारण दत्त साहब इस समय हमारे बीच उपस्थित नहीं हो सकते हैं। उन्होंने क्षमा मांगी है और अपने प्रतिनिधित्वरूप मुझे भेजा है। तब साइए-पीजिए मित्रों !"

इतना कहकर वे मेरे पास आए। मुझे तो काठ मार गया। मैंने कहा, "क्या हुआ ?"

"कुछ बात नहीं जानी, उन्हें बहुत अहरी काम निकल आया। सासो, अब हम लोग मेहमानों का मनीरजन करें, जिससे उन्हें भाई साहब की गैरहाजिरी धमरे नहीं।" धीरे वे तेजी से भीड़ में घुसकर बीमो की धावमयल में लग गए। निरुत्साह हो छाती पर परधर रखकर मुझे भी यह करना पडा। पर मैं ऐसा प्रनुभव कर रही थी जैसे मेरे गरीर का साया रक्त निबुड गया हो, धीरे मैं सर रही हू।

जैसे-जैसे मेहमान विदा हुए। मूने घर में रह गए हम दो—दिलीप-

कुमार धीरे में। उन्होंने मेरे निश्चय साफ़ कर कहा, "यह क्या मामी, तुम्हारा तो चेहरा ऐसा हो रहा है, जैसे महीनों की बीमार हो। क्या तबियत खराब है तुम्हारी?"

"नहीं, मैं ठीक हूँ, पर वे कब तक सोटेंगे?"

"उन्होंने कहा था कि छुट्टी होते ही मैं आ जाऊंगा। अब जब तक माई साहब नहीं आ जाते, मैं यहाँ हूँ। आप चिन्ता न कीजिए। लेकिन आपने तो कुछ खाया-पीया ही नहीं है। इतने मीठे खा-पी गए, जो माँतिक है, बढ़ी रह गया। तो कुछ खा लीजिए न—मैं साता हूँ।" पर मैंने उन्हें रोककर कहा, "नहीं, मैं कुछ नहीं खाऊँगी, आप बैठिए।" मैंने एक कुर्सी की ओर इशारा किया। कुर्सी पर बैठते हुए उन्होंने कहा, "मामी, खाया-पीया तो मैंने भी कुछ नहीं। माई साहब के बरबडे पर हमें दोनों घाटे में रहे।" वे खिलखिलाकर हँस पड़े। मैंने उठते हुए कहा, "आप काहए न, मैं साती हूँ।"

पर उन्होंने हठ ठाना—जब तक मैं नहीं खाती वे न खाएंगे। साधारण मुझे भी बैठना पड़ा। कुछ खाया, पर मेरा मन कहाँ-कहाँ भटक रहा था। वहाँ है वे? ऐसा प्रतीत हो रहा था जैसे मेरे प्राण उनमें उमरते हुए हों और वे उन्हें निर्यतता से दूर बैठे लींच रहे हों। मैं बाहरी थी कि वे दिनीपुमार यहाँ से चले जाएँ और मैं जो भरकर रोऊँ।

पर वे नहीं गए। मेरे कहने पर भी कहने लगे, "आपको मकेली छोड़कर कैसे आ सगता हूँ, बरी खराब बात है—इतनी देर हो गई अभी नहीं आए।"

इसारी प्रश्न मेरा मन कर रहा था, पर मेरी बानी जड़ थी। मैंने अपनी सारी शक्ति अपने घाँसुओं को रोकने में लगा दी थी।

रामचरण परधर की मूर्ति की भाँति बराबे में चुरचुरा सा था। सब नोकर-चाकर आकर तो रहे थे, पर यह एकनिष्ठ बाह्यांग सेवक चुरचुरा सा था, कड़ाबिन् मेरी बेइनामी का मुँह भयोदार। उसकी उल्लिखित से मुझे काँपन बंध रहा था। अन्ततः वे आए, मगर बड़होश होकर, और रामचरण ने उन्हें उठाकर लज्जत पर खाल दिया। मेरा मुँह टीडरे के समान बाँधा हो गया। मैंने बाहर आ, दिनीपुमार से कहा, "अब पाँच भी आएँ," और मैं उसने घाँसुओं के देश को न सभास

सकने के कारण भावकर अपने समयवृद्ध में चुस गई। न जाने कितना रोई। चकाबट ने मेरा उपकार किया, मैं तो गई।

घोर फिर साधारण प्रभात था। वे प्रसन्न घोर स्वस्थ चाम पर बैठे थे। मैं उनके सामने घाना नहीं चाहती थी, पर उन्होंने बुला भेजा। मैं धाकर चुपचाप बैठ गई। केतनी से प्याले में चाम उड़तते हुए उन्होंने कहा, "बहो, कैसा रहा तुम्हारा कम का प्रसता? सब ठीक-ठाक रहा न?"

मैंने जवाब नहीं दिया। उनकी बात में कितना अंत मर्म का था घोर कितना सहानुभूति था—यह मैं न जान सकी। परन्तु प्यार की तो एक बूंद भी नहीं है, यह अक्षर्य जान गई। यह रात तो गत वर्ष के समान थी, पर यह प्रभात वैसा न था। मुझे धुर देखकर उन्होंने चाम की चुस्की लेने-लेते कहा :

"धुर क्यों हो? क्या नाराज हो?"

"क्या मुझे मारते नाराज होने का भी अधिकार है?" मैंने कहा।

"क्यों नहीं? पर मेरा कमूर पहले साबित करना होगा।"

"आपका कमूर? क्या एक घोरत मर्द के कमूर पर भी विचार कर सकती है?"

"उत्तर कर सकती है। यह तो स्त्री-पुरुष की समानता का युग है।"

"आप मानते हैं कि स्त्री-पुरुष समान हैं?"

"उत्तर मानता हूँ।"

"और, तो बताइए, कम आपने मेरे साथ अन्याय नहीं किया? इतने मेहमान आए, फिर आप ही ना बर्बडे, घोर आप गायब। कौन-सा काम या भला, मुनू तो?"

"क्या मुझे मेरे उपस्थित न होने का कारण नहीं मात हुआ?"

"हुआ—अब आपको उस हालत में घर धाते देखा।"

"तो नस, यह मैंने तुम्हारी आज्ञा का पालन दिया।"

"मेरी आज्ञा का?"

"नूल गई तुम, तुमने कहा था—'आज यहाँ ठिक न करना।'"

"औ तुमने घोर वहीं जाकर किया।"

[illegible][illegible][illegible]

अब मैं जानि चले कहूँ न कस ॥ बड़े सब दिवस ॥ नमस्कोता दिवस
 दुपके — जिने ही ही को — यम है बड़े दुख दिवस ॥ बड़े बड़े बड़े दिवस
 बड़े है ॥ बापों-बापों गान नम कह मे बहूँ न कसता बड़े दिवस बापों
 बुद्धिवा बहूँ-बापों है नम बापों — दुपके बहूँ नम है बापों बापों बहूँ
 बापों नम बहूँ है बापों बापों बापों है ॥ बापों के नम बहूँ नम
 बहूँ बापों बहूँ — नम बहूँ बापों बापों बापों बापों है, दिवस बहूँ
 बापों है, बहूँ बापों बापों दिवस बहूँ है ॥

सीने के धा के पीने पर । मैं जो सब कुछ कह गई । उन्हीं सब वक्तों
 हुआ सब कुछ का । बहुत बुरा हुआ के । मैं सबका, सब कह गयी दुःख
 मुझ पर रात आई है — पर धीरे-धीरे सब कुछ गुनाह हुआ गया । सब
 का के सबार ही जान के, पर सभी का जान के । इनका मरणा का ।
 फिर उम्मीद का गहर में उन्नीस निमेष गई थी — एक मरणा का
 निषा का । गहर का पीना सब कुछ के मरणा न का । पीना मरणा के
 साया धीरे धीरे बोवा । पर उन्नीस हाथिनी उन्नीस दिन न हुई । मेरा
 रोना-भीड़ना सभी के मरणा — उन्नीस दिन का के सबकुछ हो बाहर हो
 पीने के धीरे सबकुछ होकर सभी रात के मरणा का पीने के ।

यह इस बार मैंने एक टाक टानी की । जैसा ही मैं कह रही थी वह

निमग्नता मैंने किसीको नहीं दिया। पर सौगंधाभिरासों से सजा हुआ
 का घोर टेबलों पर विविध पकवान लगे थे—पर मेहमान एक भी न
 था। मैं घबेरी हो घर में थी। सब नीकतों को भी मैंने बिदा कर दिया
 था। पर रामचरण नहीं गया था। वह मेरी सेवा में हाज़िर था।
 प्रत्यक्ष घर तीमरे बराम में था। उसे मैंने धिमा-नीलाकर सुना दिया
 था। मैं बात बंदी उस दीपावली से घालीकित घर में कभी-कभी
 आकाश में बिखरे तारों को देख लेती थी। दिसीपकुमार आए। घाते
 ही कहा "यह क्या ? क्या आज कोई मेहमान आए हो नहीं ?"

"ऐसा नहीं ! आज तो आ गए हैं।" मैंने एक कीकी मुस्कान होंठों
 पर लाकर कहा।

"लेकिन...लेकिन....." उन्होंने मेरे मुंह की ओर देखकर अपना
 वाक्य अधूरा ही रखा। मैंने कहा, "आप अपने मित्र का क्या संदेश लाए
 हैं, कहिए।"

"भाई साहब आए ही नहीं अभी ? बड़ी सराब बात है। लेकिन..."

"लेकिन क्या, कहिए न ?"

"लेकिन यह तो बड़ी सराब बात है।"

"उनकी पैरहाज़िरी में घोरों का आना घोर भी सराब बात
 होती।"

"भायद, पर भाभी, क्या आपने निमग्नता भेजा ही नहीं इस
 बार ?"

"क्या आपको निमग्नता मिला ?"

"नहीं। पर मेरी बात छोड़िए। लेकिन..."

मुझे हुंसी आ गई, उस दुःख में भी। मैंने कहा, "सैर, लेकिन को
 छोड़िए, सबके हिस्से का भाग ही सगदए-नीशिए।"

"नहीं, नहीं, मैं जाता हूँ। भाई साहब को ये बताता हूँ। किन्तु
 आप ?"

"मेरे विषय में आप क्या कहते हैं ?"

"आपने भाभी, न सादी बदली न बाल बनाए।"

"मुझे इसका ध्यान ही नहीं रहा।"

"तो सैर, अब रुपये बदल डालिए चटपट, अब तक मैं भाई साहब

दिलीपकुमार राय

ती बार जिस दिन मैंने ऐसा को देखा—उनी राणु मैंने समझा वह मेरी है, मेरे लिए है। विवाह जल्द उसका दत्त के साथ हुआ दत्त उसका पति है—पर मर्द उसका मैं हूँ। घायल जिन चरित्र को कहते हैं, मैं उसका कतई कायम नहीं हूँ। इस सम्बन्ध में मेरे अपने विचार हैं। मुझे इस बात की परवाह नहीं है कि मेरे विचारों का मिल-ठूकरों के विचारों से बैठना है या नहीं। मैं अपने ही विचारों की समझता हूँ। मैं जिन विभाग में नीकर हूँ उसका ठीक-ठीक परिश्रम से करता हूँ। मेरे ऊपर काम की जिम्मेदारी भी है और धर्म भी मुझे करना पड़ता है। दोनों ही बातों को मैं ठीक-ठीक समझता हूँ, ठीक-ठीक उन्हें धन देता हूँ। बिला शक गर्जमन्दों से मैं बर्त लेता हूँ, उनके काम भी कर देना । ऐसे काम भारे-सीधे होते हैं। मैं गर्जमन्द लोगों की इच्छा और आवश्यकता के अनुसार कुछ कर देना हूँ, कुछ बातें जान लेने में उन्हें सुविधाएं दे देता हूँ—इससे शांति की कोई हानि नहीं होती। इसका नजराना मैं गर्जमन्दों से लेता हूँ। नियम-कायदों की अपेक्षा मैं आदमी को महत्व देता नियम-कायदों को तोड़कर मैं आदमियों की सहायता करता हूँ। नजर में वह आदमी की सेवा है। बस, बात इतनी ही है कि इस के बदले मैं उनसे नजराना लेता हूँ, मुक्त उनका काम नहीं करता। लोग 'रिजर्व' कहते हैं। मैं ऐसा नहीं समझता। वे खुशी से देने हैं। खुशी से लेता हूँ। भूख लोग कहते हैं : मनुष्य को त्याग करना चाहिए। मैं भी त्याग के महत्व को समझता हूँ, परन्तु त्यागने की वस्तु ही त्यागता हूँ, ग्रहण करने की वस्तु को ग्रहण करता हूँ। धन-दौलत-... की नहीं, ग्रहण करने की वस्तु है। तो मैं उसे ग्रहण

करता हूँ। वह मेरे काम खाता है। उनसे मैं अपनी लुप्तियाँ खरीदता हूँ। ॥ जानता हूँ, दुनिया बड़ी टेढ़ी है। इसमें जसेबी जैसे बड़े दांव-बैंगम हैं। उनमें फंसे हुए मादमी की खुशी हवा हो जाती है; वह परेशानियों में, मुश्किलों में फंसे जाता है। पर मैं यह भी जानता हूँ कि मादमी की सबसे बड़ी दोषत उसके दिल को लुप्तो है। वह मादमी को धकसाता ही भाव्य में मिला सकती है, यह मैं नहीं मानता। मैं तो हर वक्त उसकी तक में रहता हूँ, जहाँ और जैसे मिले मैं उसे प्राप्त कर लेता हूँ। पर बहुत-सा मुझे यह खरीदनी पड़ती है। खरीदने के लिए खपया बहुत प्रायः एक और चीजनी चीज है, इसलिए मैं खपये को बहुत प्यार करता हूँ। और उसकी प्राप्ति का कोई धक्कर नहीं करता हूँ। हाँ, यह जहर देना मेना ॥ कि कोई सख्ता या उनभक्त न सामने आ जाए। अपनी लुप्तियाँ खरीदने के लिए मैं खपया लेता हूँ। यदि उसमें खुशी ही अतरे में पड़ जाए तो मैं उस खपये को छूता नहीं हूँ। इस प्रकार खपये-नीते का लेना देना मैं पूरी सावधानी और समझदारी से करता हूँ।

यभी मैं जवान हूँ और मर्द हूँ। तन्दुरुस्त हूँ। तबियत भी रखता हूँ और बुद्धि भी। भागिस में बहुत बुद्धि खर्च करनी पड़ती है। उसमें मुझे कुछ भी खुरक हानिल नहीं होता। पर वह भीकरी है। उससे खपया भी मिलता है, इच्छत भी है। उसीसे समाज में मेरा एक स्थान है। मैं मृत्तिभिन्न हूँ, इसीसे बहा हाउ तोड़कर परिचय भी करता हूँ, बुद्धि भी खर्च करता हूँ। पर सबकी सब नहीं। बुद्धि का एक भाग अपने लिए बचाकर रखता हूँ, उसे मैं अपनी लुप्तो खरीदने में खर्च करता हूँ।

धीरत मर्द की सबसे बड़ी लुप्तो का माध्यम है। एक तन्दुरुस्त जवान मर्द के लिए धीरत एक पुष्टिकर साहज है—शारीरिक भी, मानसिक भी। मर्द यदि धीरत को ठीक-ठीक अपने में हजम कर लेता है तो फिर उसका जीवन आनन्द और सौन्दर्य से भर जाता है; उसका जीवन हरा-भरा रहता है। उसके मन के होसले बढ़ जाते हैं और शरीर में शक्ति का ज्वार आ जाता है। इसीसे धीरत की मेरी नजर में बहुत कीमत है। मैं उसे मर्द की सबसे बढ़कर दोस्त समझता हूँ, और अपनी पसन्द की धीरत को खरीद लेने का कोई मौका छूकता नहीं हूँ। कीमत खराने में कबूली करता नहीं हूँ। पर मुश्किल यह है कि अच्छी धीरत

मिलना मुश्किल है। विवाह के बौद्ध ने धीरे-धीरे को चकनाचूर कर
 १ है। मेरा सम्बन्ध विवाहिता धीरे-धीरे से भी है, अविवाहिताओं में
 है। जो विवाहिता हैं वे विवाह से परेशान हैं। जो अविवाहिता हैं
 वे विवाह के लिए परेशान हैं। विवाह जैसे धीरे-धीरे के लिए एक मजबूरी
 गई है। विवाह होने में धीरे-धीरे की मायबेता है—ऐसा मजबूरी
 पर मैं तो यह देखना हूँ कि विवाह होने ही धीरे-धीरे सत्य हो जाती है।
 प लोप, ध्यास कर यहिना नाराज हो जाएंगी मेरी बात सुनकर—पर
 ही सुनी राय है कि विवाह होने पर धीरे-धीरे नहीं हो जाती है। विवाह
 के ही पहले उसे पति का, फिर उसकी हठधुरी का और उसके बाद उस-
 धुरी का बौद्ध होने में ही अपनी सब जिन्दगी खर्च कर देनी पड़ती
 है। इसी काम में उसकी समूची नारीरिक और मानसिक शक्ति खर्च
 हो जाती है। वह किसी काम की चीज नहीं रह जाती। उसका मज
 गढ़ सत्य हो जाता है। और वह एक दयनीय जानवर की भाँति अपना
 प्य जीवन व्यतीत करती है, जहाँ उसका माना वहीं कुछ नहीं होता :
 वह पति नामधारी एक स्वेच्छाधारी व्यक्ति की दुब बन जाती है।
 पति-रत्नी अपना समूचा मन, शृंगार-भार्यग धीरे धीरे वह उसीके
 धारों धीरे धीरे-धीरे-धीरे खोसती हो जाती है। और तब धीरे धीरे,
 वह दुनिया की सबसे बड़ा भद्रों और निरक्षरों की चीज रह जाती है कि
 जिसके मर जाने का एकलौत एक पालतू जानवर से अधिक नहीं होता।
 बड़ी कड़वी और घटपटो लग रही होंगी मेरी ये बातें आपको। पर यह
 मेरी निजी राय है। मेरे अपने विचार हैं। क्या जरूरी है कि आप इनमें
 सहमत हों, इन्हें वस्य कर दें? मन्हा तो यही है कि धीरे-धीरे वही ही नहीं।

देखा की बात कहता हूँ। वह एक धीरे-धीरे है, साधों में एक। धीरे-
 धीरे बदन, उछलना जीवन, ध्यासी भाँसे, धीरे-धीरे को उठावने होठ।
 चम्पा की बली के समान कमनीय उंगलियाँ, एही तक लटपटी घुघरापी
 लट्टे, चाँदी-सा उज्ज्वल माथा। धनार की पंक्ति के सपान दात धीरे
 चाँदी-सा हास्य। बाह, इसे नहने हैं धीरे-धीरे, बिसे देखने ही ध्यासी में
 नगा छा जाता है। धीरे-धीरे मेरे उसे सुझा नहीं, पर फूलों के डेर के
 वह कीमत है। जब वह बोलती है, रनक-मुनक धुंधल बर उठते
 धात-धान में उसका बेहूरा रंगीन हो जाता है। भाँसे धमकने

रगनी है। प्यार का एक भरना है जो उसकी हर घटा में भर रहा है, उसे देने बिना बँने रहा जा सकता है भला ? घोर उसे देकर फिर घोर जिसे देने को मन हो सकता है।

दत्त मेरा दोस्त है, पुराना दोस्त। भला घाइबी है, पर इमने क्या ? क्या इमीने बह देना येनी घोरत का पति होने योग्य माना जा सकता है ? देना मे उसका ब्याह हुआ है। दूसरे गहनों में, देना को उस-के मो-बाय मे दत्त की पगसून की जेब मे डाल दिया। बह एक कामान की भाति उनका दस्तेबाय करना है; जब-जब मुँह का पसीना घुब-नाई पोछ लेता है। उसे पाकर देना को क्या भिन्न मरना है भला ?

दत्त नाइ की भाति तन्दुरुस्त है, प्रतिभिडन घोर विचारशील है। चायद देना को प्यार भी करता है। सबसे ऊपर बह उनका विवाहिन पनि है। पर इसीमे क्या बह देना का सब कुछ हो गया ? बकछा मान लिया कि बह देना को प्यार करता है, पर क्या यह भी माना जा सकता है कि बह देना के प्यार का प्रानन्द भी लेने की योग्यता रखता है ? मैंने ऐसे कुछ पनि देखे हैं जो अपनी पत्नियों को बोझा-बहुन प्यार करने हैं, पर प्रात्र नर देना एक भी पनि नहीं देता जो अपनी पत्नी के प्यार का पूरा प्रानन्द ले सकता हो। इन मूढ़ पतिवों को, जो अपनी पत्नियों को अपनी जिन्दा होयन समझने हैं घोर शिकायत तो परो में उबोच रखने हैं, भला घोरत का प्यार कैसे मिल सकता है ? उन्हें तो घोरत की बीज घोर विरक्ति ही पस्ने पड़ेनी। सभी जगह मैंने यही देखा है।

देना के प्यार का चादि-मन्न नहीं है। पर बह उसे संजोए किसी-को धरँए करने के लिए उरमुक करी है। वह समझती है कि दत्त — उसका पति ही उसका हकदार है। वह उसकी अपनी समझ नहीं है, उस समाज की परम्परागत समझ है जिसमे वह पत्नी है; वह चाहती है कि एक बार उसका बह पति उसके प्यार पर सडर डाले घोर बह उसे उसपर न्योछावर करके अपना नारी-जीवन धन्य करे। पर दत्त को उस घोर देखने की सभी फुर्मत ही नहीं मिली है। यह मैं प्रात्र पाच साल मे देलना क्या भा रहा हूँ। चायद प्यार की परत ही उसे नहीं है। बह एक वेल है जो अपने प्राकिस में जुटा रहता है। देना उसकी पत्नी है, उसके पर ही बहारदीवारी में सुरक्षित है — उसका शरीर उसके लिए रिजर्व

है, वस, उसके लिए यही काफी है। वह गवा यह नहीं जानता कि रेखा पत्नी ही नहीं एक घोरत भी है। पत्नी घोर घोरत में क्या मन्तर है, इसे गायद समझने का जऊर भी दत्त को नहीं है। घोरत की भूमि भी उस गवे में नहीं है। मैंने तो नहीं गुना, कभी नहीं उमने किसी घोरत को मनन्द किया हो, घाम उठाकर देखा हो, घोरत में मानन्द की अनुभूति की हो। अपने माफिस में वह एक परिचयी साड है, घोर घर में एक भूत प्रभावमाने पनि। फिर रेखा उमने भूत कैसे रड सकती है ! कब तक वह घाने छकडा-मरे पाप को लिए बैठी रहेगी, इन प्रतीक्षा में कि वह उसकी घोर देने घोर वह उसे उसको समर्पित करे। पर वह कर भी क्या सकती है ? मैंने उसे रोने देखा है। कैसे मरमोम की बान है ! वे प्यार में लबालब घाने घामुघों में तर हो, घुम्वन के घमितायी होंठ घुछा में सिडुड जाएं। उमंघों में मरा हुषा दिघ बंड जाए। घोर इसी उम में। नई, मैं तो हमेसा में यही कहना रहा हूं कि यह विवाह जैसी नामुराद चीड दिनों को मसोस घानने के लिए ही है। इससे किस दिघ में कुछ पाया !

पाच साल हो गए, पर घाज तक रेखा ने मेरी घोर घाल नहीं उठाई थी, जिसका मैं इन्तजार सदैव करता रहा हूं। बहुत घोरतों के प्यार का घानन्द मैंने प्राप्त किया, पर इनकी प्रतीक्षा किमोकी न करनी पडी। मैं जब उसे भाभी कहना—तो उसके जबाब में जो कुछ उसकी घांघों में पाना चाहता, नहीं पाना पा। घाज पाच साल बाद मेरी वह घमि-सापा पूरी हुई। घाज उसकी घालों में मैंने वह चीड देखी जिसकी मुझे प्रतीक्षा थी। घब तो रेखा मेरी ही है। घोक, किनेने घानन्द की बान है ! लुनी में मेरे भूत को एक-एक बूद नाथ रही है !

मैं भी पीना हूं, पर दत्त की भाति क्या बनकर नहीं। रेखा के लिए वह भूत सराब नहीं छोड सका। घब रेखा गई उसके हाथ में। सोम मनमने है, विवाह करने ही घोरत घा गई हमारे हाथ में। पर मैं जानना हूं—मैं में एक भी पति घोरत को घाना नहीं सका। सामाजिक बघन बहुत पुराने है, बहुत मजबुत है। उन्होंने घोरत को पत्नी बनाकर, पनि के माघ भूत बनकर बांध दिया है। छूट नहीं सकती वह उसमें। पर इसमें कुछ लाम छोडे ही हुषा ! वह गले का हार न होकर तिस हो

पई, जो गले में बांधी है, घोर जिसका असह्य भार पति को जिन्दगी-भर उठाना ही होगा। इसीसे लोग गृहस्थी को एक ज्वाल कहते हैं। उसमें फंसकर छटपटाते हैं, या मूँट मुड़ाकर भाग खड़े होते हैं। बास, ये घोरत को पहचान पाते, घोरत का प्यार या सनते, घोर जिन्दगी का लुत्फ उठाते !

समाज ने घोरत के तन को ही विवाह-मन्थन में बांधा, मन को नहीं। पर ऐसा बाधा कि कसाइयों को भी मात कर दिया। धर्म कह-कर प्रथम को हृद कर दी। मुर्दे के साथ हिन्दा घोरत को फूक दिया। सताश्रियों तक फूँकते रहे, घोर उसे सती बहकर सराहते रहे। पर इससे क्या घोरत का मन जोता गया ? घोरत, जो दुनिया की एक नियामत है, जिसकी हस्तों से दुनिया रंगीन बन जाती है—एक जाने-बजाल बन गई। कितने महात्माओं ने घोरत को विष की बेल बूझा, उसे खाने देने की सलाह दी, कितने सन्तों ने स्त्री-सम्पर्क को एक पाप बताया; परन्तु झकसोस, उस सचाई को कोई न परख सका जो प्रकृति ने हमारे सामने रख दी थी। हमने घोरत को अपने समाज की छाती का परावर बनाकर रखा, उसे घादमी के गले का हार न बना सके।

बहुते हैं, श्रीकृष्ण की सोलह हजार रानियाँ थीं। पर वे सब मनेली राधा की न वा सखी। राधा सबसे ऊपर सबसे घाने रही—कृष्ण से भी ऊपर। कौन थी वह राधा ? कृष्ण की पत्नी नहीं थी। कृष्ण उसके पति न थे, सखा थे; घोर राधा भी सखी। यह सख्य-भाव कितना पनपा ! कृष्ण ने राधा का प्यार पाने के लिए अपनी धारें राधा के हलुघों में बिछा दीं; बेहि में शिरसि पदपस्तबमुदारम्। कौन पति अपनी पत्नी के हलुघों में धारें बिछाता है ! कौन उसके चरणों में मतमस्तक हो उसके महावररंजित चरण अपने मस्तक पर रख देने की उससे प्रार्थना करता है ? यह पतियों की जमात गर्वों की जमात है। वे पतियों को अपनी दाम-रोटी की भाति खाते रहते हैं—जब तक कि वह मर-मिट नहीं जाती। घोरत का प्यार तो शायद ही किसी पति को मिलता होगा।

मैं भी माया का पति हूँ। धन से नहीं—बाईस बरस से। पर मैंने उसका प्यार पाया, यह मैं ठीक-ठीक नहीं कह सकता। शायद नहीं पाया। मेरा पति होना ही इसमें सबसे अधिक बाधक हुआ। अपने पति-

देने की लेंठ में मैंने कभी उसे आत्मसमर्पण नहीं किया और मन की
 न खुशने से वह भी मुझे आत्मसमर्पण न कर सकी। जब वह मेरे ब
 ही नहीं रही। कितना भगडा-टंटा हुआ, कन्हा हुई, पर बात बनी
 नहीं—बिगड़ती चली गई। हफ्तों जब मेरी उसमें बोनचान बन्द न
 है। दूसरो को देखकर उसकी चाली में जो मृदुता और होंठों पर
 घाली है वह मुझे देखने ही वर्षों की धूल की भांति गायब हो जाती
 मैं जानता हूं, प्यार उसके पास बहुत है। वह एक दिसदार औरत
 बात कि वह मेरी पत्नी न होकर सखा होती, तो जीवन का सुख
 भी उठाली और मैं भी। वर भविष्यमान और संदेह की एक दीवार,
 हम दोनों के बीच बन गई है, उससे वह अपना प्यार सड़क पर तो ब
 है पर मुझे नहीं देती।

मैं जानता हूं—प्यार को भी मुख्य चुकाया जाना है। वह समझ
 है कि मैं उससे प्यार का मूल्य नहीं चुका सकता। उसका ऐसा समझ
 गलत भी नहीं है। इसके बीच में बहुत-सी बातें हैं। कुछ कहने के स
 नहीं है, पर एक बात तो है। जब पत्तियों की भांति मैं समझता हूं
 एक बार पत्नी के कम में उसे पहलू करने पर मैंने उसके समूचे प्यार
 मूल्य एडवांस में ही चुका दिया है। जब तो वह प्यार मेरी ही सप
 है। इसीपर उसका विद्रोह है। मैं समझता हूँ, विद्रोह ठीक ही है—स
 पति तो यही समझते हैं। औरत भी समझ जानी है—मेरा यह प
 तो बिक चुका; अब इसपर मेरा अधिकार ही नहीं रहा। परन्तु मि
 का दास तो नमद कुछ बिचा नहीं, इसीपर वह विद्रोह करती है—उ
 से प्यार घुरा-घुराकर घोरों को बेचती है, और उसका जो दास मिल
 है, कम मा पयादा, उन्हींसे अपना काम चला लेती है।

एक बात मैं और कहूँ, जिसे मैंने बड़े ही परिश्रम से जाना है
 औरत को अपने-आपने बहुत कम प्यार होता है। वह अपने को
 करनी ही नहीं, वह उसका दुर्भाग्य है। इसीसे वह बान-बान पर ज
 देने पर उताव्न हो जाती है। बहुत-सी तो जान दे ही देती है। अपने
 प्यार करनेवाली औरतें विरल ही मिलती हैं। उनकी शिक्षा-दीक्षा
 सामाजिक स्थिति सब ऐसी है जो उन्हें अनि स्पृहटि बनाए रखती है
 वे न जीवन के ठीक-ठीक मद्देन को समझ जानी हैं, न जीवन के स

आनन्द का उन्हें भोग प्राप्त होता है । काम ! घोरत को विवाह-अन्धन में जकड़कर उसे परकैव न कर दिया होता । वह बसकर पति की दुम के साथ न बाँधी गई होती । रंगीन नितली की भाँति वह मधु-सोमप मौरों के साथ बेवचन रसमान करती, जीवन का आनन्द लेती घोर देती । देवी काम साधक करनी ।

रेखा

मेरे विवाह से पहले ही से राय की दत्त से मित्रता है। सदा सुख रहे हैं। जहां तक मैं जानती हूँ, वे दत्त के सबसे प्रियतम मित्र हैं। इसीसे प्रारम्भ से ही मैंने उनका एक भाति सत्कार किया। वे भी मुझे 'भाभी' कहते रहे। यह शब्द रिझता है। ऐसा प्रतीत होता है कि भाभी में देश हिंसा रहता है। परिवर्तन पनि से भीत-दाकिता रहती हैं, नहीं। वे निरसंकोच देवों पर अपनी फरमाइशें जकड़ी रहती। सुनी से उनकी प्रति करते हैं। पति बहु गहरिया है, जो का भेद की भाति पत्नी को हाकता है। वह केवल शासन करता भावना प्रकट नहीं करता। पत्नी पर शासन करना उसका अधिकार है। उसकी कामधेष्टा भी मुर्गे के समान है जो एक बलात्कार ही है। वह कन्नूर की भाति कन्नूतरी की सुन करता। स्त्री प्रेम की भुज्जी है और उसकी यह भूष कितना इसपर पति कभी विचार नहीं करता। पनि पत्नी पर नाराज है, जवान भी तमब करता है, अनुशासन भी रखता है। अनुशासन रखता है, न नाराज होता है, केवल हंसकर भाभी अधिसाधारण पूर्ण करता है। यह भाभी सम्बोधन भी कितना फिर वह किंगी मुन्दर, सम्य और भाषुक तरण के मुख ने गुन और भी मोटा हो जाना है।

राय तटला नहीं है। मेरे पति से उनकी उम्र कुछ अधिक है। के अनुवार वे मुझे भाभी कहने का अधिकार नहीं रखने। पर निम्न भाभी ही का रिझा उन्होंने जोरा है—और दस भाभी की निमाने के निम्न उन्होंने दत्त को बरा भाई मान लिया है।

दत्त उनसे उम्र में छोटे हैं । दत्त को इस नये रिश्ते से कुछ भी अपाति नहीं हुई । जब उन्होंने ग्याह के बाद मुझे देखकर भाभी कहा था तो दत्त ने हँसकर कहा था, 'अच्छा रिश्ता जोड़ा तुमने राम, इसमें अच्छा मृभीना रहेगा । रेखा तुमसे अच्छी तरह बातचीत कर सकेगी । लेकिन अब मुझे भी तुम्हारे कान मसने का अधिकार प्राप्त हो गया है ।'

दोनों बिना इसपर खूब हँसे थे । पाँच सात तक वे बराबर हमारे आते रहे । इस बीच उन्होंने कोई अमर्यादित घेष्टा मेरे समक्ष नहीं की । पर उनकी घाँवों में कभी-कभी एक ऐसी चमक अवश्य दी जाती थी कि उसे देखकर मेरी घाँवें झँप जाती थीं । मेरे हृदय पर एक घमका-सा लगता था और मैं वहाँ खड़ी नहीं रह सकती थी । पर वह चमक, वह दृष्टि बड़ी आकर्षक थी, बड़ी प्रभावशाली थी । मैं उससे डरती थी पर जब वे आते, मैं उसी चमक को एक बार फिर उनकी घाँवों में देखने की अभिलाषा रखती रही थी । और फिर मुझमें उसे घास-भर देखते रहने की हिम्मत भी हो गई ।

कभी-कभी वे माया के साथ आते थे, परन्तु बहुधा अपनेसे । ऐसा भी हुआ कि वे रात को आए, दत्त उस समय घर पर न थे । वे बड़ी देर तक बैठे रहे । गपवप करते रहे । बातचीत उनकी बड़ी दिलचस्पर होती थी । उनकी बातें मुनकर तबियन ऊठती नहीं थी । कभी-कभी तो दिल में गुदगुदी होती थी । सात कर तर, जब बीच-बीच में वही चमक उनकी घाँवों में दीख पड़ती थी । अब उयों-उयों दिन बीतते जाते थे और हमारा परिचय पुराना होता जाता था, उस चमक के साथ एक हास्य उनके होंठों पर और एक याचना उनकी दृष्टि में प्रकट होने लगी थी । मैं नहीं कह सकती कि उस हास्य और याचना को देखकर मन में जो सिहरन उत्पन्न होती थी, वह कैसी थी—पर उसका इतना प्रभाव तो स्पष्ट ही था कि उसे बारम्बार देखने को मन होता था । अब अज्ञात ही मैं उनके आने पर अपने जरीर और कपड़ों की व्यवस्था का ध्यान करने लगी । न जाने किस अज्ञात शक्तिसे मुझ उनके आने का पता लग जाता था—और मैं अपने बास बनाने और सादियों का धुनाव करने लगती थी । और उस दिन उनके पाचवें बर्यडे पर, जब दत्त को गैरहाजिरी के कारण मैं मन-मग्नित बैठी थी और मैंने दिन-भर के परिश्रम के बाद

जाने तक नहीं बदले थे, जब उन्होंने मुझसे वास बनाने और सादी बदलने का अनुरोध किया। यह अनुरोध कोरा अनुरोध ही न था, उसके साथ वही चमक उनकी छांवों में थी, परन्तु उन चमक के साथ उनके होंठों पर वह अनुपामी हास्य न था—न दृष्टि में वह साक्ष्य भी। अभिभूत, उसके स्थान पर एक तीव्र विपत्ति थी, जिसे देखने पर मैं संवत् न रह सकी। एक आसुरी तीव्र वासना का ज्वार जैसे मेरे मन में उमड़ छाया। और मैंने उन क्षण ऐसे चाव से शृंगार किया कि जैसा आज तक अपने जीवन में नहीं किया था।

दत्त से विवाह हुए अब मुझे पांच साल बीत चुके थे, उनके लिए न जाने मैंने कितने शृंगार किए, और उन्होंने काश्मयी भाषा में उन्हें न जाने कितने बार सराहा; परन्तु उन सब शृंगारों में और इसमें अंतर था। उन सबमें संकोच था, सज्जा थी, यदिकचित् निरानन्द भी था, पर यह शृंगार मेरी उद्दाम वासना का शृंगार था। यह उद्दाम वासना उस एक ही क्षण में न जाने कहाँ से मेरे मन में छा बसी थी। मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा था कि जैसे मुझे बुलार बड़ा है; और जब नया शृंगार करके मैं उनके बिजकुल निकट, दूरी कि जितनी आज तक कभी ना गई थी, जा पड़ी हुई तो मैंने देखा—उनकी छांवों की वह प्यास भी चमक एक हिल पशु की चमक में बदल चुकी थी। उसने क्षण-भर मुझसे एक नशे का मालम पैदा कर दिया। मुझे ऐसा प्रतीत होने लगा कि जैसे यह आदमी अभी-अभी मुझे निपल जाएगा। और मैं भी जाने किस भाव में अभिभूत होकर मन ही मन कह उठी—तो निपल जाओ, जा जाओ, जो भी चाहे सो करो। उस समय उनका वक्ष मे वक्ष से सट रहा था और उनके दिव की धड़कन मुझे ऐसी लग रही थी जैसे हथारों लोपे दनदना रही हों। और मैं अनुभव कर रही थी कि उन्होंने मुझे भरने से समेट लिया है।

इनने ही मैं दत्त का गढ़। वे नशे में थे, पर आज अनेकानृत होश हवास में थे। राय के सामने भी और उनके जाने के बाद भी उन्होंने मुझसे प्रेमालाप किया; पर उससे मुझे खरा भी सुली न हुई, खरा मैं मेरे मन में उल्लाह न जगा। काश, वे बेहोशी की हास्य में धाते। और राय? मोक मैं क्या कहने जा रही हूँ! मेरी खबरन टूट क्यों नहीं

जानी ! !... मैं पिट्टी के एक सोपड़े की भाँति उनके घंक में पड़ी रही, रात-भर । उनका संरूपाश मुझे ऐसा लग रहा था जैसे किसीने मुझे ज़मीन में बस लिया है, और जैसे मेरा दम धुट रहा है । वाराच में यदि दल धुत न होने तो मेरी उस विरक्ति को वे अवश्य ही भाँप जाते । परन्तु उस दिन तो वे कुछ प्रायश्चित्त-सा कर रहे थे, अनुताप-सा कर रहे थे । प्रेम भी जाता रहे थे, पर वे सब बातें, उनकी वे सब चेष्टाएँ मुझे घसड़ा-सी लग रही थी । और मैं झूठझूठ सोने का बहाना बनाकर राय की उन बातों की व्यास का नज़ारा देख रही थी, उसका मुस्क उठा रही थी ।

मुबह जब उन्हें ज्ञात हुआ कि मैंने इस बार किसीको निमन्त्रित ही नहीं किया तो वे बहुत बिगड़े । मैंने भी मुंहतोड़ बकाब दिया । लौंडी नहीं हूँ । मोच खरीदकर नहीं लाई गई हूँ । सरवाचार कब तक सधूँ ? सन्यास भी हो और डाँट-पटकार भी ! बोरी भी और बीनाबोरी भी ! नहीं, मैं बदरिण नहीं कहूँगी, मैंने यह ठान ली ।

बचून करती हूँ, दल का प्यार बोधा प्यार नहीं, सच्चा प्यार है । मैं स्वीकार करती हूँ— वे सचमुच मुझे प्यार करते हैं । मैं यह भी कह सकती हूँ कि इधर-उधर दूमरी घोरतो की ताक-झाक करने की उनकी पावन नहीं है । उनमें यदि कोई दोष है तो यही कि वे वाराच पीते हैं, माना से अधिक, और रात को देर तक पर से वीरहाविर रहते हैं; मुझे घनेली उनकी प्रतीक्षा में आँखें बिछाए बैठा रहना पड़ता है । बहुधा मुझे रोना भी पड़ा था, और उससे मेरा मन उनके विरह विमृष्टता से भर गया था । और उनके लिए मेरे मन में प्यार भी क्षम हो गया, एक बूद भी न रहा, यह मैंने उसी दिन जाना ।

उसके दूमरे ही दिन राय धाएँ । अभी बिराग नहीं जले थे और दल के जाने का अभी समय नहीं हुआ था । मैं सोफे पर पड़ी लटप रही थी । मेरे दल की प्रत्येक बूद मे राय ऊमम मचा रहे थे । राय और दल दोनों की मानस-सूतिषा जैसे मुझे पाने को इन्द्र कर रही थी—मैं दल को पीछे धकेल रही थी और राय में समाती जा रही थी । कमरे में प्रवेश था कोई मौकर-वाकर वहाँ न था । राय धाएँ, झपटते हुए— जैसे चीता भाना है निश्चन्द, और उन्होंने झपटकर मुझे घबने संरूपाश

के समान दिना दौरे पराजित हुआ वह पर हुआ केरे ही डों पर, बल्ल
 नर, बल्लों के बल्लों पर आने के कारण पर दिना । मुझे ऐसा लग
 कि व बल्लों के — दूध-दूध के, आर्य आर्याणों के वी दूध बल्लों
 के बल्लों पर बल्लों के । वी दूध के दूध में लो वही दि दिना बल्लों
 के वी के वी के बल्लों पर बल्लों पर दिना वी । वी के वी के वी के
 के वी के बल्लों के वी के दिना ।

.

दत्त

यह हो गया गया है रेखा को ? पून के समान कोमल उसका धानि-
मन सफ़ाई के समान सफ़्त हो गया है । यह कुछ खोई-खोई-सी रहती
है । उसके नेत्रों में भी एक विचित्रता देखता हूँ । अब वह मुझसे मालें
मिलाकर बात नहीं कर सकती; जैसे उसे मेरी घोर देखने का भाव ही
नहीं रहा हो । सिर्फ़ मधे-मुले शब्द बोलती है और कुछ कहते-बहते जैसे
कुछ भूल जाती है, यद्वारा जाती है, थोँक पड़ती है । कभी-कभी अकस्मात्
ही बच की एक मालें चितवन में उसके नेत्रों में देखता हूँ, जैसे अचानक
किसी भयानक घटना को देखकर उत्पन्न हो जाया करती है । मैं तो
अब कभी उसके साथ सफ़्त बात भी नहीं करता, यत्नपूर्वक उसे प्रसन्न
रखने की चेष्टा करता हूँ । फिर भी वह मुझे देखकर हँस क्यों जाती है ?
बहुते तो ऐसा नहीं होता था—मुझे देखते ही उसकी मालें कोमल के
समान खिल जाती थीं; अग में कुर्नी-बुस्ती धा जाती थी, होंठ अधिक
साल हो उठते थे, कभी-कभी तो कड़कने-से लगते थे । ऐसा प्रतीत
होता था, बुझन का निमग्नता दे रहे हैं । तब तो मैं उसकी घोर से
अनाग्रहान ही था—इस प्रकार मानो मेरी कीमती धरोहर, भारी रक्तम
हिकादत से मेरे घर मे रखी है, उसकी चिन्ता करने की आवश्यकता
नहीं है । इसके बाद ही मैंने अपने धन्यावापरण पर भी विचार किया ।
कबूल करता हूँ, यह शराब ही मेरे-उसके बीच बाधा बनी । मैं समय
पर धर नहीं धाता था । मैंने कभी इस धीनित्य पर ध्यान नहीं दिया ।
पर अब तो मैं बहुत ध्यान रखता हूँ । उसे प्रसन्न रखने के सब सम्भव
उपाय करता हूँ; पर ऐसा प्रतीत होता है जैसे-जैसे मैं उसे बटोरता हूँ,
वह विलरती है, बेकाबू होती जाती है ।

क्या उसे कोई दुःख है ? बहुत बार मैंने पूछा है, पर सदैव उसने

कहा—'नहीं'। पर उसका घर नहीं दिखता ठंडा है किंतु घर में गुनने ही मेरा हृदय ठंडा हो जाता है। कदुवा भी बड़ा बुरा है ही नहीं। उसकी हड्डी के मुझे रोना प्रतीत होता है कि मेरी उम्मीदें सब उसे उनकी शिव नहीं प्रतीत होती। कभी-कभी तो घण्टा-भी मरने है। क्या बात है यह? इसकी जड़ भी कुछ समझ है। क्या उसका मन प्रद्युम्न से लगा है? यदि मेरे दैनिक क्या कुछ पर उसका प्रेम केन्द्रित हुआ है? यह तो मेरी ईर्ष्या का विषय नहीं होना चाहिए। पर नहीं, नहीं, ऐसी बात भी नहीं है। प्रद्युम्न को लेकर पलने बड़ा दिन उमा के मेरे निकट धानी थी, घर बड़ा धानी है। बड़ा तो जैसे घर मुझे रोक कर छुई-मुई-सी गिरुवा जाती है, जैसे बड़ा मेरी गली नहीं, कोई बंद मोरत है। देर से घर में जाने पर पलने बड़ा गुस्सा करती थी, कभी भी घोर कभी कहती-मुननी भी थी। उसका गुस्सा मुझे सफ़ा लगता था, उसमें उसके घट-टे प्रेम का कुछ था। पर घर तो वह कुछ भी नहीं कहनी; जैसे मेरे घर में जाने-जाने में उसका कोई वात्सा ही नहीं रहा। उस दिन मैंने उससे पूछा कि क्या वह बीमार है, तो इसका भी उम्मे बड़ी ठंडा जवाब दे दिया, 'नहीं।' देना रहा कि मुझमें उसकी शिव-बस्ती कम हो रही है।

राय कि नाम से वह चीरनी है, स्थिर नहीं रह सकती। प्रत्यक्ष छिड़ते ही चल देती है। क्या बात है यह? राय तो क्या उसे बिड़ है? बेचारा भला भाइसी है, सुनमिखा है, मेरा पुराना दोस्त है। वह सदैव मुझे घोर उसे भी प्रसन्न करने की चेष्टा करता रहता है। उनसे क्या रेखा को नाराज कर दिया है? ऐसा भाइसी तो बड़ा है नहीं। इसका वह भाता भी कम है, घोर जब जाता है, प्रद्युम्न के साथ खेचता रहता है। भूब घुटती है प्रद्युम्न से उसकी। परन्तु इसमें तो रेखा के नाराज होने की कोई बात ही नहीं है।

कई दिन से मैं मन ही मन घुट रहा था। मैंने पात्र टान लिखा था। पात्र सुनकर बात बर्कना। घासिर मैं उसका पति हूँ, उसके मुख-दुः की मुझे ही - - - लेनी चाहिए। घोर मैंने उससे कहा, "रेखा, क्या बात है?"

... "हो ?" एक फीकी हंसी हंसकर उसने

बहा घोर घासें नीची करतीं ।

मैंने कहा, "सबमुच तुम यह रेखा नहीं हो, बहुत बदल गई हो । बताओ क्या बात है, क्या तुम मुझसे नाराज हो ?"

"नहीं ।" इतना कहकर वह जाने लगी । मैंने रोककर कहा, 'ठहरो ।' तो वह मुंह केरकर चुपचाप खड़ी हो गई, जैसे सबमुच कोई गर-श्री हो । क्या यह वही रेखा है जो बात-बात में हसती थी, हमसे-हंसते ब्रिमके गाल में गड़े पड़ जाती थी, जो बात में बात निकालती थी ! जब किसी बात पर खिद करती थी, गले में दोनों हाथ डालकर झूल जाती थी और जरा-से अनुग्रह पर तड़तड़ झुझल करने लगती थी । 'तुम बहुत ही अच्छे हो,' उसका यह वाक्य कितने गहरे निश्वास से निश्चलता था । पर अब क्या ? अब तो ये सब बातें हवा हो गईं । सब उसकी याद-मात्र करके रंगों में सड़ गये हो जाता था । दफ्तर के काम में यथावत ही नहीं प्रतीत होती थी । जब घर सोटने का समय होता था तो खून की एक-एक बूंद नाचने लगती थी—'किन्तु अब तो अबसाद ही अबसाद है—ठप्पा घोर बासी ।

मैंने उठकर उसे निबट बुलाया, गोद में बिठाकर प्यार किया । बहुत कहा, बहुत कहा, 'दिल की धान कड़ो, दिल की चुप्पी खोलो, क्या हुआ है तुम्हें ? क्या तकलीफ है तुम्हें ? क्या चाहती हो तुम ?' किन्तु सबका जवाब वही—'कुछ नहीं', उसी प्रकार मुह केरकर । झोंक, बिलनी ठप्पी थी वह 'बुद्ध नहीं' ! जैसे छुरी की नोक हो । गुस्सा घा गया मुझे । मन हुआ कि केंक दू उठाकर । सायद वह भी मेरे मन की बात जान गई और आदिस्ता से मेरे संकपाप से निवृत्तकर चुपचाप बैठ गई, दली भाति मुह केरकर !

मैं बिना ही साफ-पिग् बाफिस चला गया । मैं कैसे बरसित कहां यह सब ? धानिर मेरा दीप भी तो हो । मैं तो रेखा को दिल ॥ प्यार करता हूं । मैं इस बात पर गर्व भी कर सकता हूं कि मेरे जैसा प्यार धरनी पत्नी को सब कोई नहीं कर सकते । क्योंकि मैं कुछ लापरवाह व्यवहार हूँ । पर हम पति-पत्नी हैं । दिखाने की हम लोगों को क्या जरूरत है ? क्या हम अब अपने प्यार को भी नाप-सोलकर देते-लेते रहें ? मानना हूं—मैं झिंक करता हूं । पर वह मेरी पुरानी आदत है । वह इमे नहीं पसन्द



फिर भी उसमें नुस्ख है, मैं स्वीकार करता हूँ । कभी-कभी रपावती हो ही जाती है और मैं 'धोखर खोज' हो जाता हूँ । पर इससे मैंने धाज तक किसीका कोई नुस्खान नहीं किया । बिदेस में मैंने देखा है, रान को पीकर एकदम बदहवास पति को लेकर जब उसके दोस्त उसके घर पहुंचते हैं, तो उसकी पत्नी उसे महज एक विनोद ही समझती है । वह पति के मित्रों का हंसकर स्वागत करती है । और पब्लिक से पब्लिक एकाध उधाहना देकर पति को छुट्टी दे देती है । दूसरे दिन उनके नये प्यार का, नये प्रामन्द का दिन होता है । मैंने तो नहीं देखा, कहीं कोई पत्नी केवल त्रिक को लेकर ही महाभारत खड़ा कर दे । रेखा को मैं प्यार प्रवश्य करता हूँ, पर मैं उसकी गुलामी तो बर्दाश्त नहीं कर सकता । यह रेखा की रपावती है, फिर भी अब तो मैं उससे डरने ही लगता । उसी दिन की बात को, दोस्तों का भी कुरा बना, सोसाइटी में गवार कहलाया और सबकी छोड़कर भाग पाया । सो यह बेवकी उसीका मतीश है ।

उस दिन मेरा बर्बडे था । दोस्तों ने घेर लिया । मुझे उन्हें एक काफ़टेस-पार्टी देनी पड़ी । सदैव से देता रहा हूँ, पर इन बार मैंने निश्चय कर लिया था कि जल्द घर सौदूगा, और दोस्तों के मना करने पर भी मैं सबकी छोड़-छाड़कर लिसक जाया । बरो भरी बात थी । मैं मेहमान था, मेरा बर्बडे था और मैं ही उन्हें छोड़कर भाग पाया । निमन्त्रितों में केवल दोस्त ही न थे, मुझसे ऊँचे घोहदे के व्यक्ति भी थे । मुझे उनमें तबियत खराब होने का बहाना करना पडा । मन को बहाने कुरा लग रहा था, पर रेखा का ख्याल था । इस बार घर पर भी मेहमानों की साव-भजन करना मैं चाहता था; पर पर जाकर देखा—सब सामग्री जैसी की तैसी रखी है, घर पर मेहमान कोई नहीं है । मनेसे राम से लेकिन कुछ परमान-से, बदराए-से । और दूसरे दिन मुझ जब मुझे ज्ञान हुआ कि रेखा ने इन बार किसीकी निमन्त्रित हो नहीं किया था, तो मैं अपने को काबू न रख सका—बरस पडा । किन्तु भली-बुरी जो बात थी सत्य हुई; पर रेखा उसी दिन से बदल गई है । उसके सब रंग-उग कुछ के कुछ हो गए हैं । मैंने ही मनाया है उसे । अगर अब वह एक निर्राव गुड़िया-सी हो गई है जिसमें जानी भरने से उसके हाथ-पैर तो चलते हैं पर प्राण उसमें नहीं है ।

माया

राय मे मैने सबमेरिज की थी—सपने माना-गिता की स्वीट्टि और रसामन्दी के विरह । गिताओ चाङ्गेने थे, हिसी सन्धे-भले घर में मुझे पुसेङ्कर सपनी डिम्मेरागी से मुक्त हो जाएं । भले घर से मनपव उनकी नजर मे था जहां परिवार मे मधुमक्खी के छने के समान बैशुमार औरत-मई और बच्चे मरे हुए हों, लूव जप्या हो और गानदार मकान-कोठी हो, मोटर हो । म्हा सहुद भी टपकता हो और मक्खिया भी डंक मारती हों । एक हम रहा हो, एक रो रहा हो; एक गुममुम हो, एक बमकार रहा हो; एक मर रहा हो, एक जाम से रहा हो । इमे के कहते थे मरा-पूरा परिवार । पर मुझे इस मधुमक्खी के छने की एक मक्खी बनना स्वीकार न था । दुनिया मैने देखी तो न थी, पर कुछ कुछ समझी थी । जब मैं एम० ए० मे पढ रही थी, तभी मेरी एक सहेनी का ब्याह ऐसे ही भरे-पूरे घर मे हो गया था । वह बड़ी सन्धी लडकी थी, निहायत सुनमिजाज । विनोदी स्वभाव और बालमुलम मरलता की मूर्ति थी — सुन्दर मो थी और प्रतिभा-सम्पन्न भी थी । बी० ए० मे वह प्रथम और मैं द्वितीय आई थी । ब्याह के समय वह बहुत गुन थी । दूरहा उसे पसन्द था । सभी हाल मे विभावत से डाक्टरेट लेकर आया था । सांवला-सलौना, गटीला जवान था । हादिरजबाब और मम्प-शिष्ट, चीन-चाफ से दुरुस्त । दूरहा मुझे भी पसन्द आ गया था और मैने ऐसा दूरहा मिलने के लिए सखी को बधाई भी दी थी । पर ब्याह के छ महीने बाद जब वह समुराल से सीटकर आई तो उसके रंग-रंग सब बदले हुए थे । वह मुस्त, उदास और जीवन से उबताई हुई-सी, कुछ खोई हुई-सी हो रही थी । उसका वह जन्मुक्त हास्य, दिन पोलकर उसाह से बालपीत ना बग, सब गायब हो चुका था । मैने कहा, "यह

क्या हुआ ? सभी जवानी तो चली ही नहीं, घोर बुढ़िया हो गई !
 उसने बहुत रोना धरने मन जो, पर फूट पड़ी । उसने उस धरे-गूरे प.
 का बरतान किया जो बसह, ईर्ष्या, ईर्ष घोर घटागि का भद्दा बना
 हुआ था । जहाँ व्यक्ति की कोई भर्षादा न थी । जहाँ प्रत्येक रसभी था,
 प्रत्येक घसंतुष्ट था, प्रत्येक लक्ष्महसन था । उसने अपनी ब्रिटानियों की
 करतूतें बताईं, जो उसके मन को ईर्ष्या से घोर लज्ज-निष्ठ रहन-गहन
 को जोष से देवनी थीं । उसके बनाव-मिमार यंत्रा तक कि माक-नुपरी
 बगड़े पहनने सब को वे देखावृत्ति बहनी थीं । वे उसी एकाग्रचिन्ता
 का मझाक उठानी । उसे यमही घोर छोटे घर की बहकर निरन्तर
 करती थीं । सास थी, जिनके साथने सब बहुरं या तो गान्धू ब्रिटिशों
 थी, या बकूलरी । उन्हें मिर्के दरजे में बैठकर गुटरगु करने की स्वतन्त्रता
 थी । साम के सिर से पके बाल उछाड़ना घोर उमरी मुसाहिबगीरी
 करना उसका प्रधान कार्यक्रम था । लोकर-बाकर पोंरी करते । बहुरं
 फूट्ट बंग से थोड़ी की बर्बादी करती । बच्चे घरम दजों के ब्रिटी ।
 बच्चों को लेकर दिल में दम बार भू-भू मै-मै हांभी । पति घर में न रहने
 वे । दूर भीकरी पर थे । साग में बहू को उनके साथ भेजने में इम्बार
 कर दिया था । बड़ी बटिनाई में बहू पिता के साथ था पाई थी । उसके
 समुर ने ली हुज्जतों की थीं—'घात क्यों ले जाने हैं ? घावने ब्याह कर
 दिया, सुट्टी हुई । सयानी लड़की घावने घर ही बसी है ।' लीर-तमबे भी
 चला दिए समुर ने—'दात-दट्टेन बम दिया था । कंगसों त्रैसा व्यवहार
 था ।' घोर भी बहूउ-सी बानें । बेचारी मेरी सली का पिता बहून
 अपमानित होकर किसी तरह पम्प्टु दिन के लिए बेटी को घर लाया
 था ।

मेरा हृदय न जाने कैसी विनृधला मे भर गया उसी बानों को
 सुनकर । परन्तु दूसरी बार के बरस बाद जब बहू अपने छ मास के
 बालक को गोद में लेकर आई तब तो उसका रहा-सदा पानी भी उतर
 गया था । उसनी धांसों के चारों घोर स्वाही फेल गई थी । घावों में
 सब तेज तो था ही नहीं । जिसके एक हास्य में ली ब्रिटलिया लक्ष्मी
 थी, वह हास्य मर चुका था । बेहरा रास के समान हो गया था । उसे
 न सब घावने बरसों को संभालने की रचि थी, न किसी बान में थाव था,

जैसे वह इसी उस में जीवन से बेजार हो चुकी थी। उस बार तो वह अधिक ध्यान भी नहीं करती थी, चुन रहनी थी। बहुत पूराने पर खोपी हमी हुमती थी और जब उनका मन बहुत व्याकुल होता था तो अपने माँ माँ के बालक को हमरावर दिल बहलानी थी। यही तो था ब्याह का मूल्य, जो उसे मिला—घपनी देह देकर घबसा, बलन और रिराया। मैं जितना सोचनी उनका ही मेरा मन रिडोह कर उठता। मैंने ठान लिया कि बिबाह बकनी ही नहीं। किसीको मैं अपना घपम्य प्यार भी दूँ और दातो कर्नूँ। भला क्या तुक है इसमें? अपने प्यार की कीमत मैं जान गई थी। कितने सरल उनके एक कण के लिए साधामि हो मेरी भुदुटी की घोर देखते थे उन दिनों! मैं सबको समझनी थी और दबित होती थी। कोरा प्यार ही नहीं, शरीर भी तो था मेरा, जिसका कोई मूल्य माँका ही नहीं आ सकता था। मैं न तो अपने प्यार को सस्ता बेचना चाहती थी, न उसे अपना को किसी भी मूल्य पर देना चाहती थी। तो मेरा प्यार मेरे ही संभल में एकलिन होना पड़ा, और उसके बोझ में मैं कराहने लगी। प्यार तो सब किसीको देना ही होता—
 ॥ ही तो उसकी सार्थकता होगी—इस बात पर मैं जितना ही विचार करती, व्याकुल होती जाती थी। मृत्यु-संकीर्ण का मुझे बचपन से शौक है। बचपन में मेरे इसी शौक के कारण मेरा नाम लगने लगा था 'राधा'। तब उस नाम का साहाय्य देने जाना नहीं था। सब जाना तो राधा नाम चरितार्थ करने को भर मिठी। बैसे कहीं मैं अपने मन की शीर, और तभी मेरी नजर के नीचे आए राम। बिन्दपी को एक सजीव मुनि, रस-भरा बल्लभ। माँसो में क्या मद था कि क्या कहूँ! उन बाजों को धात्र बाईस वर्ष हो गए पर धुपी नहीं हूँ, धूल सक्नी भी नहीं हूँ। और तभी मेरे मन में एक नई अनुभूति भी हुई। मैंने देखा, बैसे प्यार किसीको दे जाने को ॥ मरी जा रही हूँ—बैसे ही प्यार को एक धूल भी मुझे मारे जान रही है। उसकी पीड़ा तो मैं बहुत दिन से अन्तरात्मा में अनुभव करती रही थी, परन्तु अलग कारण जान न पाई थी। वह सब अब सब मैं समझाना ही अपने प्यार में मुझे सराबोर कर ॥ मेन के हिसाब-किताब रखने का मुझे होश नहीं रहा। देन- ॥ बहुत, पर क्या दिया, क्या लिया—वह मैं नहीं जानती।

घोर जब होगा घावा तो मैं उनको ही चुनी थी, घपपा के मरे ही मुके थे। फिर तो देन-लेन की होठ मच गई। वे जितना देने उतना बहुत-बहुत मुना भी देती। बदले में वे भी दान देते थे कि क्या बह। उनका प्यार मुझे अपने रग में समावोर करना घोर मेरे प्यार में वे दुबलियाँ लगाने। उन दिनों विरह के सब फूल खिल रहे थे, जब तारे जगमगा रहे थे, सारी दुनिया हल रही थी, जब पर्वत हरे ही हरे थे, सब सज्जन बलबल निनाद करनी आ रही थी। दुनिया का मोन्दर्य दुनिया में बिगना पड़ रहा था घोर हम दोनों—मैं घोर राय—एकमात्र उनके दर्शन घोर माधी थे।

अकस्मात् ही कुछ घनहोली-सी होती प्रतीत हुई। मैंने अचभीन होकर देखा—मैं अभी हाथी आ रही हूँ। फिर मैंने अनुभव किया, कोई मेरे पैर के भीतर लाने चला रहा है। मेरा मन उदास रहने लगा। आस-सुख घोर सबमाद मेरे मन में भर गया। मुझे न लाना पड़ा लगना न नाच-रग माना था। मैं सब नाच नहीं सकती थी। मेरा पैर बड़ रहा था। जिसमें बहनी बह मुह केतर हल देना। राय में कहा तो उन्होंने उसे घुम समाचार बनाया। मैं बर्बाद हो रही थी घोर दुनिया घनमग्न मना रही थी। घोर फिर वह भयानक रात आई—जब हजार-हजार बलिघा मेरी घरेली जान पर चली। यह प्यार का मुख्य था। परन्तु मैं मुझ ही गई। घोर जब हाँस में आई तो देना—बाद-किरण-सी एक सजीव मुझिया मेरा स्तन घुम रही थी। बाहूरी प्रकृति। बाहूरी बिन्दवना! बाहूरी प्यार! बाहूरी घोरत! बाहूरी मरे! मेरे ये रग-रग! मे जादू के खेल!

घोर मेरी बन्नी बड़ी होने लगी। इसके बाद जब प्यार की जमा-पूजी की मैंने समासा तो कलेजा धक् हो गया। मेरा प्यार तो अब मेरे ही घाँघल में पड़ा-पड़ा लगी हो रहा था घोर मुझे जो मिल रहा था वह प्यार न था—प्यार की ललछट थी, कदवी घोर प्रिय। अपने प्यार का मुख्य तो मैंने ब्याह से पहले ही जान लिया था। अब मैंने उसे मन में अपने कलेजे में दिया लिया। राय को यदि उसकी भूष नहीं है तो क्या जरूरी है कि अबदेस्तो उन्हें ही दिया जाए? परन्तु अब मेरी भूष मुझे बेचैन कर रही थी—वह बहुत बड़क उठी थी। मुझे बेर-सा प्यार

ਸਾਹਿਬ ਸਾਹਿਬ ਸਾਹਿਬ ਸਾਹਿਬ ਸਾਹਿਬ ਸਾਹਿਬ ਸਾਹਿਬ ਸਾਹਿਬ ਸਾਹਿਬ ਸਾਹਿਬ
ਸਾਹਿਬ ਸਾਹਿਬ ਸਾਹਿਬ ਸਾਹਿਬ ਸਾਹਿਬ ਸਾਹਿਬ ਸਾਹਿਬ ਸਾਹਿਬ ਸਾਹਿਬ ਸਾਹਿਬ

ਸਾਹਿਬ ਸਾਹਿਬ ਸਾਹਿਬ ਸਾਹਿਬ ਸਾਹਿਬ ਸਾਹਿਬ ਸਾਹਿਬ ਸਾਹਿਬ ਸਾਹਿਬ ਸਾਹਿਬ
ਸਾਹਿਬ ਸਾਹਿਬ ਸਾਹਿਬ ਸਾਹਿਬ ਸਾਹਿਬ ਸਾਹਿਬ ਸਾਹਿਬ ਸਾਹਿਬ ਸਾਹਿਬ ਸਾਹਿਬ
ਸਾਹਿਬ ਸਾਹਿਬ ਸਾਹਿਬ ਸਾਹਿਬ ਸਾਹਿਬ ਸਾਹਿਬ ਸਾਹਿਬ ਸਾਹਿਬ ਸਾਹਿਬ ਸਾਹਿਬ

हैं। घायद के ममी से दुखी हैं।

एक दिन मैंने उनसे कहा था, "ईश्वरी, घाय ममी से बोझते क्यों नहीं हैं ? उनके पास बैठते क्यों नहीं हैं ? पहले तो ऐसा नहीं था। जब घायका घायकिन मे घाने का वक्त होता था, तो ममी गयेघान हो जाती थी। स्वयं नाथता मगाती थी। मुझने तकाजा करके कपड़े बदलवाती थी, घाय भी नई गाड़ी पहननी, बाल बनाती, घोर गुनगुनाती हुई धार-धार पट्टी की घोर देखती रहती थी। हर मिनट पर कहती थी—'तेरे ईश्वरी मे घाय इतनी देर कर हो। अभी तक नहीं घाए।' पर सब तो ऐसा नहीं होता। सब कुछ बीकरी पर छोड़ दिया है उन्होंने। ईसे घायमे उनकी कोई दिलचस्पी हो नहीं रही है। घाय घाने हैं तो किसी बहाने के नहीं निस्क जाती हैं।"

हंसकर मेरी जान मुनकर ईश्वरी ने मेरे मिर पर हाथ केरते हुए कहा, 'तेरी बात ठीक है सीता। उनकी सब मुझमें दिलचस्पी नहीं रही। मैं पुराना हो गया। लेकिन तू तो मेरा बहुत क्यास रखती है, तू अभी पक्की बेटी है।"

सब बात कहते-कहते उनकी हंसी साधन हो गई, घोर में देखती गह गई। मगर सब तो कुछ-कुछ में समझ रही हू। इन बर्मा साहब की बात, ईश्वरी उनका घाना पसन्द नहीं करते। फिर उन्हें घाने को मना क्यों नहीं कर देते ? न करें थे, मैं मना कर दूंगी। हम तीन घायमी पर मैं हू। मैं हू, ईश्वरी हू, ममी हू। सब, बोये की क्या जरूरत है। नहीं, नहीं, बिलकुल जरूरत नहीं है, मैं घाय ईश्वरी से कहूंगी। सब बात कहूंगी।

कहा, "ममी, ये बर्मा साहब मुझे धक्के नहीं मारने—इन्हे बंद कर
 देना न पाया करें" तो कहने लगी, "तू कौन है, जो मुझपर हम
 करानी है। वे मेरे पाप का नहीं जाने, मेरे पाप जाने हैं; हमेंना जाने।
 मैं उनसे बिगड़ एक सपना नहीं मुनना चाहती।" मैं भी सब बैठी। मैं
 कहा, "मुनना क्यों नहीं चाहती ? मैं ही उनसे कहूं तुम्हीं कि न मरना
 करें," तो हाथ छोड़ बैठी। उनका बिबाह ही बिगड़ गया है। वे
 चाहती हैं कि मैं होस्टल में आ रहूं, घोर फिरार में उन्हींका राह हो
 जाए। क्यों रहूँ अपना मैं होस्टल में ? उन्हींमें डैडी को पट्टी पड़ाई थी।
 डैडी राखी हो गए मुझे होस्टल में भेजने के लिए। अगर मैंने इन्कार कर
 दिया। मैं नहीं आऊंगी—मैंने भी टाल ली।

डैडी घर बंदी देर करके घर जाने हैं, पता नहीं कहाँ रहने हैं।
 ममी से वे बिचे-बिचे रहने हैं। घरने को तरह दिन जोनकर हमने-
 बोलने नहीं है। घोर कैसे बोलें ? ममी का तो उन्हें देखने ही मुँह लगाना
 हो जाता है, तथियन कराव ह' जानी है। डैडी राग को देर तक क्रि
 करने रहने हैं घोर फिरार जाने हैं। पहले तो ऐसा नहीं होता था।

घर में कितना मूनारन था गया। मैं न मन की बात ममी कह
 सकती हूँ, न डैडी से। जब कहना चाहती हूँ तो ऐसा लगता है जैसे कोई
 परावर छाती पर धड़ गया है। धाकिर जान क्या है ? किधु जान पर
 लड़ाई है ? वह कभी सत्य भी होगी ? मुझ दूई, डैडी ने मुझे निबवर
 नहीं दिखाई। उस दिन मैंने कहा तो उदासी से बोले, "ममी के मान
 बली जाना।" ममी भला मुझे साथ क्यों से जाने लगी ? वे तो जाएँगी
 बर्मा साहब के साथ।

डैडी मुझे प्यार करने हैं। वे धक्के मारती हैं। बहुत धक्के हैं।
 मन की बात मैं उनसे कह सकती हूँ, मेरी किसी बात को वे नहीं टालने।
 वे सदा प्रसन्न रहते हैं। पर पहले जैसे देर-देर तक मेरे साथ हंगते थे,
 अब नहीं हंसते हैं। सब जरा-सा मुस्काकर रह जाने हैं। धाकिस का
 काम बहुत बढ़ गया है ; बहुत देर में घाते हैं, पर फिर चले जाने हैं।
 पूछती हूँ—'डैडी, अब धाक मेरे साथ साथ नहीं खेलते, बातें नहीं करते।'—
 तो जरा-सा हसकर कुछ बहाना कर देते हैं। बहाने को जाने मैं सम-
 झती हूँ, धक्की तरह समझती हूँ। कुछ जान है उनके दिन में, जो छिपाने

उस मुझसे ज्यादा है। वह बाईस बरसों से राय की पत्नी है, जबकि मैं अभी तक कुंवारा हूँ। वह चासीस में ऊपर की छातु को पहुंच चुकी है, और अभी मैं केवल छत्तीस का ही हूँ। फिर भी मेरा मन उसे देखकर उमपर पारपित हो गया। और मैंने देखा, माया ने इसे जान लिया। और वह नाराज नहीं हुई, सदाव हुई। राय की मेरे ऊपर सन्देह तक नहीं हुआ। और हम दोनों—मैं और माया—नी सम्भवतः मज्जात ही एक-दूसरे को और आकर्षित होते चले गए। परन्तु प्रेम की भाषा मैं नहीं जानता, प्रेम के तरब और प्रेम के एन को भी समझ नहीं जानता। आपनो आश्चर्य हो सकता है—मेरी उम्र के आदमी को आश्चर्य अपेक्ष कहा जाता है। सी मेरा यह प्रेम सम्बन्धी पतान सम्बन्ध हास्यास्पद है। परन्तु मैं एक दरिद्र परिवार का मवस्थ हूँ। जिसे लोग मदहूषीसी कहते हैं, वह उम्र तो मेरे जीवन-मरण में पित्त गई। पिता स्वर्गवासी हा गए। माता, दो भाई और दो कुमारी बहिनों का तिर पर बोझ लेकर मैं अपनी कच्ची छातु में ही बिना ही पृष्ठव बने घुड़व बन गया। मेरी सारी भावुकता पेट की बिम्बा में लप हो गई, और उभरता हुआ जीवन भोजन के बोझ से चकनाचुर हो गया। जीवन की रसीनियों से मैं संचित ही रहा। बिम्बा और ऐश्वर्य तो दूर, जीवन में सतोप और तृप्ति के वर्तन भी नहीं हुए—केवल मूय ही को मीने जाना-पहचाना और अपनी जवानी धवित कर दी।

वेसाक मैं कहता हूँ—मैंने अपनी भूल को अपनी जवानी धवित कर दी, और अब मर्दा में केवल छत्तीस ही बरस का हूँ, उस जवानी की उमर मैं अपने भीतर नहीं देख रहा। आज भी तो मैं भूल से लट रहा हूँ। बहिनो की शादी हो गई। एकमात्र पैतृक मकान रहन हो गया। एक भाई अभी पड़ रहा है, दूसरे को नोकरी मिली है, पर अभी यह किसीने सहायता देने के योग्य नहीं है। जितना कमाता हूँ, सब खर्च हो जाता है। और मूय नैसी ही कायम है।

बाखिर यह भूल क्या बला है! इनपर मैंने बहुत बार विचार दिया है। तन की भूल पर भी और मन की भूल पर भी। कम्युनिस्ट लोग कहते हैं, दुनिया के सब सदाई-अगड़े तन की भूल के कारण हैं।

वर्मा

मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा है, जैसे मैं ज़िन्दी बहाने में टकरा गया हूँ। माया घोरत है मगर बहाने की तरह मन्त्र घोर घबराव। मैं नहीं हूँ, मगर छुई-मुई के पेड़ की भाँति मन्त्रों की घोर भिन्नता में घरा हुआ। राय मेरे घबराव हैं, घोर मैं उन्हींके घबराव का एक कर्मचारी हूँ। अब यदि मैं मूल्यममूल्य माया में घबराव मन्त्रव्य स्थापित कर लेता हूँ, तो मन्त्रव्य मेरी मन्त्रव्य नहीं रहेगी। राय मुझे कभी नहीं बनेगी। मैंने एक सुन-मन्त्रव्य घबराव हूँ। पर कोई किन्ता ही सुन-मन्त्रव्य हो, घबराव घानी के जार को मन्त्र नहीं कर सकता। मैं जानता हूँ, राय का घबराव हूँ नहीं है। घनेक सरकियों से उनके सन्त्र हैं। उनके सन्त्र में मैं बहुत-सी बहानियाँ सुन चुका हूँ। घबराव के घबरावों से हूँ तक उनकी रंगीन बहानियाँ बहते-मुनते हैं पर उनसे किसीको कोई निकास नहीं, सब उनसे सुन हूँ। वे जैसे सुन-मन्त्रव्य हैं वैसे ही उदार भी हैं। कितनी बार वे घबराव मातहत लोगों का पक्ष लेकर ऊपर के घबरावों से भिन्न गए हैं। बेशक वे सीधे-सादे घबराव नहीं हैं। पर सीधा होना कोई घबराव बात घबराव ही है। बेशक मायों, जिनके घबराव पर मन्त्रों की घबराव घबराव ही है, वेबल घबरावों के कारण ही बहानों की घबराव का शिकार बनती हैं। उनपर वे सीधों का प्रहार नहीं करतीं। राय न स्वयं मन्त्रव्य को पसन्द करते हैं न किसीकी घबरावों की तारीफ़ करते हैं।

माया से मेरी मुलाकात घबराव होने से है। राय की मुलाकात घबराव घबराव रहती है। उन्होंने मुझे कठिनायियों से उबारता है। मैं तो यहाँ तक कह सकता हूँ कि वे मुझसे प्रेम भी करते हैं। घबराव उनके पर मेरा घबराव-घबराव घबराव हुआ। माया से घबराव हुआ। मैं नहीं जानता क्यों। घबराव ही नजर में मैंने माया को पसन्द कर लिया। उसकी

मैंने विज्ञान की शिक्षा पाई है। मैं जानता हूँ कि हमारे शरीर का निर्माण करने की शक्ति हमारे रक्त-सेलों में है। जैसी छोटी-छोटी इंटों से मकान बनाए जाते हैं, उसी प्रकार सेलों से शरीर बना है। और रक्त-प्रवाह के साथ जीवन-शक्ति सारे शरीर को मिलती है। परन्तु यह प्रवाह काम-वापस पर निर्भर है। काम-वापस हमारे शरीर में एक भाग जलाती है, उसने लपे हुए युवावी गानों को देखकर हमें प्रसन्नता और उत्तेजना होती है; क्योंकि इससे रक्त की उत्तमता का सम्बन्ध है। जिसका ही हमारा रक्त उत्तेजित होगा, उनका ही हमारा स्वास्थ्य उत्तम होगा; और रक्त की उत्तेजना का उत्तम प्रकार कामोत्तेजना ही है।

मानवीय विकास का इतिहास काम-विकास से प्रारम्भ होता है। पहले काम-वासना के विकास से रहित होते हैं। यह उनका सौभाग्य ही है। उनके कोमल मनु शरीर और सुकोमल हृदय भला काम के प्रयोग को कैसे सह सकते थे!

प्राणी-शास्त्र विद्वानों ने कहा है कि प्रेम का उदय विचार में होता है। परन्तु प्रेम पर सशय रहने की आवश्यकता पर भी उन्होंने विचार किया है। शरीर एक महत्वपूर्ण वन है, उससे उतना ही का लिया जाना ठीक है जिसने की शक्ति उनमें है। प्रेमोत्तेजना में ही शरीर की शक्ति ने बाहर काम किया जाएगा तो निश्चय ही उस पर विचारमय परिणाम अनिष्टकारक होगा। जब प्रेम के साथ कामोदय होता है। रक्त में और नाडियों में एक तीव्र उत्तेजना का अनुभव होता है। काम-विकास की अनुभूति में प्रेम मिलकर एक मानसिक काम बन जाता है। परमार्थ प्राज्ञाद्वयक होता है। वह जब युवा पुरुष में, जो स्वस्थ भी पूर्ण चाहेगा में होता है तो प्रेम के पर उग घाने है और उसे जीवन नहीं का कहीं से उठते हैं।

ऐसा ही मैंने अपने जीवन में देखा। मैंने कहा था कि मैं स्वस्थ युवा था। और जब-जब मेरे रक्त में कामोत्तेजना होती थी, इसका रक्त के प्रवाह में घनत्व पड़ जाता था, वह मैं अनुभव करता था। और मैं तब-तब जब मैं उठता था तो ऐसा प्रतीत होता था कि शरीर साथ गरी ही इन्द्रियाँ जाग उठी हैं। मैं देखता था कि तबिक सोच

स्वास्थ्य और प्रतिष्ठा के लिए मरने की भीड़ थी। तब इस काम-धनु को दमन करने का क्या मार्ग हो सकता था ? इस निर्दय मनुष्य का इलाज स्त्री थी, जो मुझे प्राण न थी। कभी-कभी प्रकृति सहायता करती थी, पर वह क्लृप्त न थी। इस दुर्दम्य काम-पीड़ा को शान्त करने के लिए एक घादों साधी की आवश्यकता थी, जो इस घानन्द के प्रादान-प्रदान में बराबरी की प्रतिस्पर्धा करे और जिसे मैं अपने-घापको सोप दूँ, जो न केवल घानन्द की धनिशु भीभाष्य की भी बात थी।

परन्तु मुझे ऐसा साथी नहीं मिला। और मेरे जीवन की दुपहरी इस बठिन काम-संशाम में सड़ते-सड़ते ही कटो। मेरी इस जीवन की कठिनाई और दयनीयता का कोई वहाँ तक अनुमान लगा सकता है भला।

मैंने बह्मचर्य और संयम की चर्चा की है। दोनों का ही मैंने सहारा लिया पर लाभ कुछ न हुआ। यह कहना कि बह्मचर्य से किसी हालत में कोई हानि नहीं है, सरासर सर्वज्ञानिक है। मैंने तो देखा कि बह्मचर्य के पालन में बेहद सारीरिक शक्ति खर्च हुई और उससे स्वास्थ्य के उत्साह का वेग ही एक गया, और मैं सदा के लिए स्थान और निश्चिन्त हो गया।

यह एक बड़ा ही पेचीदा सवाल है, जो मेरे जैसे लाखों-करोड़ों लक्ष्मों के सामने आता है कि प्रविवाहित व्यक्ति को वानेच्छा होने पर उसकी पुति किस प्रकार करनी चाहिए ! यह सवाल पारोग्य-विधान की दृष्टि से मैं कर रहा हूँ। क्या वह स्वसंभोग करे जो हानिकारक है, या बेस्वामन करे जो क्षतरनाक है, या परस्त्रीगमन करे जो अनैति है ? वह यदि समान-वचन और नीति-बंधन में बंधने की परवाह नहीं करता तब तो कोई दिक्कत ही नहीं है। मैंने इस सम्बन्ध में चिकित्सकों से राय ली और उन्होंने स्पष्ट कहा कि वह किसी भी स्त्री से सहवास करे। मैंने जब नीति की बात कही, तो उन्होंने कहा—चिकित्सक नीति का रक्षक नहीं है, स्वास्थ्य का रक्षक है। मैंने चाहा कि वे कोई ऐसी धामक घोषण दें कि जिससे मेरी बड़की हुई वासना शमित हो जाए—परन्तु उन्होंने निश्चित रूप से मुझे सचेत कर दिया कि यदि मैं ऐसी कोई घोषण देने की मूर्खता करूँगा तो न केवल काम-वासना, प्रत्युत शरीर

मस्तिष्क में रक्तसंचारण भर जाना था । रक्तसंचारण जीवन में कितना बहुमूल्य है, इसे सब लोग नहीं जानते । और भी एक बात है जिसे सब लोग नहीं जानते । जिनकी अधिक मस्तिष्क की बढ़ी गति होगी, उतनी ही उत्तेजना अधिक होगी । इसलिए कामोत्तेजना जीवन के सब कामों से अधिक महत्वपूर्ण है । वह जितनी ही अधिक होगी, उतना ही मस्तिष्क विकसित होगा । मनुष्य अपने अस्तित्व को कायम रखने के लिए, जो न केवल उसके व्यक्तित्व में सीमित है वहिनु ब्रह्माण्ड-भर में विस्तृत है, मस्तिष्क में बहुत काम लेता है । इसीसे मनुष्य का मस्तिष्क संसार के सब प्राणिमो से बड़ा होता है । परन्तु यह एक गंभीर तथ्य है कि मस्तिष्क को आराम की जरूरत है, वेनियाँ को परिधम की । कामोत्तेजना, जो पुष्पत्व की प्रतीक गति है, जीवन की सर्वाधिक महत्वपूर्ण और आनन्दवर्धक वस्तु है ।

आप चाहे जो भी समझें, पर मैं जब अपने जीवन के सबसे नाशुच और महत्वपूर्ण लक्ष्यविन्दु पर था पहुँचा हूँ तो मन की सब गुप्त-प्रकट बात प्रकट करूँगा । एक ही शब्द में मैं कहना चाहता हूँ कि जब मैं आदि-मौल काम-वासना को शरीर में भड़का देखा था तो ऐसा अनुभव करना था कि जैसे संसार की बहुमूल्य मणि मैंने प्राप्त कर ली है ।

कोई कमजोर दिनकाला व्यक्ति उस वेग के धक्के को सह नहीं सकता था । मैं उसका निवारण नहीं कर सकता था । इतना ज्ञान मुझमें था कि मैं अस्वाभाविक आदेश से बचना गया । मुझे अपनी काम-वासना से प्रबल मुड़ करना पड़ा । मैं अपना ध्यान दूसरे कामों में बाँटना और रात-दिन काम में व्यस्त रहना, परन्तु काम-वासना अपने ही वेग से मेरे सम्मुख आ खड़ी होती ।

शारीरिक आवश्यकताएँ अनिवार्य हैं । वह वह संघर्ष है जिसमें बार-बार हमें पटना है । दिन-भर के काम से थकनाचूर शरीर लेकर जब रात को गह्रा पर जाना तो, यद्यपि वह आराम का समय होता था, परन्तु मुझे उम एकाग्र रात्रि में अपनी शारी शक्ति काम-वेग से मुड़ करने में मुठानी पड़ती थी; यद्यपि यह मुड़ मुझे थुरथुर करना पड़ता था और कभी-कभी विरम कठिनाई का साम्युख्य भी होता था । कोई भी अस्वाभाविक चेष्टा निराला मूर्खतापूर्ण थी । और बेव्यामन

स्वास्थ्य और प्रतिष्ठा के लिए मरने की चीज थी। तब हम काम-काज को हमन करने का क्या धर्म हो सकता था ? हम निर्धन मनुष्य का इलाज नहीं थी, जो मुझे प्राण न थी। अभी-कभी प्रकृति महायन्त्र बननी थी, पर वह घबेरे न थी। हम दुर्लभ काम-चीज़ को सन्त करन के लिए एक घादों वाली की व्यवस्था बना थी, जो हम आनन्द के आदान-प्रदान में बराबरी की प्रतिस्पर्धा करे और जिसे मैं माने-प्राप्त होऊँ, जो न केवल आनन्द को धनि मनुष्य को भी बात थी।

परन्तु मुझे ऐसा साथी नहीं मिला। और मेरे जीवन की दुहरी हम बहिन काम-संसार में लड़ने-झड़ते ही बड़ी। मेरी इस जीवन की बहिन ही और हजमीयता का कोई वहाँ तक अनुमान लगा सकता है भला।

मैंने बहिनपर्यं और संघर्ष की चर्चा की है। दोनों का ही मैं तारा-मिया पर लाभ कुछ न हुआ। यह बहना कि बहिनपर्यं ने किसी हानि के कोई हानि नहीं है, सरासर धर्मज्ञानिक है। मैंने तो देखा कि बहिनपर्यं के धामन में बहुत धार्मिक शक्ति लगे हुई और उससे सार्वभौम के उत्साह का बेग ही एक गया, और मैं सदा के लिए मान और निरुत्साह हो गया।

यह एक बड़ा ही बेचोटा सवाल है, जो मेरे जैसे लाखों-करोड़ों लोगों के सामने खड़ा है कि विवाहित व्यक्ति को कामेच्छा होने पर उनकी प्रति किस प्रकार करनी चाहिए ! यह सवाल धार्मिक-विधान की दृष्टि से मैं कर रहा हूँ। क्या वह स्वसंभोग करे जो हानिकारक है, या वेदपागमन करे जो उत्तरनाक है, या परस्त्रीगमन करे जो धर्माति है ? यह यदि समाज-व्यवस्था और नीति-व्यवस्था में बचने की परवाह नहीं करता तो कोई दिक्कत ही नहीं है। मैंने इस सम्बन्ध में चिकित्सकों से राम ली और उन्होंने स्पष्ट कहा कि वह किसी भी स्त्री से सहवास करे। मैंने जब नीति की बात कही, तो उन्होंने कहा—चिकित्सक नीति का रक्षक नहीं है, स्वास्थ्य का रक्षक है। मैंने कहा कि वे कोई ऐसी सामक घोषणा दें कि जिससे मेरी बढ़की हुई वासना शमित हो जाए—परन्तु उन्होंने निश्चित रूप से मुझे सचेत कर दिया कि यदि मैं ऐसी कोई घोषणा देने की मूर्खता करूँगा तो न केवल काम-वासना, प्रत्युत शरीर

की मरम्मत किया। भी मन्द नद आण्सी घोर शोष्माविनीप्र बुडावस्था मुझे घर दवागयो । यह घरीर के लिए एक योगिम को जान है, घोर इन बीजों को लयानार सेने से नरीर की घोर मन की स्फूर्ति नष्ट हो जाती है । निरमदेह कुछ परिस्थितियाँ हैं जबकि मान-सुः महीने के लिए घबरा जन्म-मर तक के लिए ब्रह्मचर्य रखना लाभदायक हो सकता है, पर वह काम-साम ज्ञानों में, काम-साम रोगियों के लिए, न कि पूर्ण स्वस्थ घोर वमवान लोगो के लिए घाय नियम बन जाना चाहिए । घोर इसके निर्णय का अधिकार नीति के उपदेशक एवं गर्मपुरुषों को नहीं है, प्रत्युत चिकित्सकों को है । स्वर्ग-प्राप्ति, मुक्ति के लिए या धर्म-लाभ के लिए ब्रह्मचर्य की आवश्यकता नहीं है, ब्रह्मचर्य की आवश्यकता स्वास्थ्य-लाभ के लिए है । मूल घोर काम-वासना दोनों का शरीर पर समान अधिकार है । कुछ लोग कुछ समय तक उत्थान कर सकते हैं । इससे यह कहना कि मनुष्य के लिए भोजन की आवश्यकता ही नहीं है, मूर्खता है । सहवास में शक्ति खर्च होती है यह ठीक है, पर काम-धन्या करने में, चलने-फिरने घोर परिश्रम करने—मभी में तो शक्ति खर्च होती है । पर उसकी पूर्ति शरीर स्वाभाविक रीति से कर लेता है । वीर्य का शरीर में एकत्रित करना सम्भव नहीं है, वह सारित होता है । तभी उसके बनने की क्रिया ठोक-ठोक होती रहती है । देशक काम-वासना की शक्ति का कुछ अंश दूसरे कामों में भी खर्चे दिया जा सकता है, पर वह पूरे तौर पर दूसरे काम में नहीं सार्ई जा सकती है । न काम-वासना संतानोत्पत्ति के लिए है—वह तो एक निजैव मुख घोर जीवन की स्फूर्ति के लिए है ।

चिकित्सकों के इस निर्णय ने मेरे मन को झकझोर डाला घोर मैं एक जीवन-साथी की प्राप्ति के लिए खड़ाटाने लगा । पर माथी को कैसे प्राप्ति करूँ, यही मेरे लिए समस्या बन गई । मैंने कायड के मनो-विज्ञान का मनन किया । उनका अचेतन-सिद्धान्त बड़ा मद्भूत है । उनका कथन है कि मन के सब व्यापार हमें साम्य नहीं होते, घोर मन का एक निरुति-प्रदेश होता है । यही निरुति-प्रदेश हमारी कामनाओं की समष्टि है । निरुति होने पर भी हमारी कामनाएं मन से सर्वथा दूर नहीं होती, प्रत्युत मन में धाम्य-प्रकाश करने की चेष्टा करती हैं ।

जीवन में जो लंटी-लट्टी भूने होती है—उसके मूल में भी वही निरुद्ध
 कामना काम करती है। हमारे मन में ऐसी घनेक कामनाएँ होती हैं जो
 सामाजिक बन्धन तथा अनुज्ञापन के कारण घमन में नहीं आ जाती।
 जब हमारी बुद्धि आलसिन होती है तब हम उन्हें बचपूरेर टालने
 पाते हैं; पर स्वप्नादस्था में जब बुद्धि चक्षुर्मय बन जाती है, तो हमारी
 ये निरुद्ध कामनाएँ स्वप्न में नाना प्रकार के रूप धारण करने लग-
 त्तवागम करती हैं।

इन निरुद्ध कामनाओं में घनेक ऐसी है जिनका सम्बन्ध काम-
 वागना से है। अनुपम सो सामाजिक बन्धनों के कारण उन्हें निरुद्ध करना
 पड़ता है और ये रुद्ध कामनाएँ घनेक उपायों से तृप्ति-लाभ करने की
 चेष्टा करती हैं, जिनके क्लेशाल नाता मानसिक रोग हैं।

मेरे मस्तिष्क में जब ये अद्विज काम-नामस्याएँ उत्पन्न रही थीं और
 मैं निरुद्ध ही मानव रोग की घोर घनेता में रहा था, तभी माया मेरे
 सम्पर्क में आई। परन्तु मैंने माया को नहीं—माया ने मुझे अपनी घोर
 लीला। मैं बह चुका हूँ, उसकी छाया मुझसे अधिक है। उसकी सामा-
 जिक स्थिति भी मुझसे ऊपर है। मेरे मन की संशय, मिथका, निरोध
 बहुत थे। पर प्रकृत भूल भी एक स्त्री के लिए घस्वम्भ भवानक रूप से
 मुझे पीड़ित कर रही थी। इन कारणों माया की प्राप्ति मेरे जीवन की
 एक पूर्ति हो गई। मैंने अपने को माया के सर्पण कर दिया है—मन से
 भी और मन में भी। और जब मैं उसका बड़े से बड़ा मूल्य चुकाने पर
 घामादा हूँ। जब तो मेरा मुर्झाया हुआ जीवन फिर से हरा-भरा हो गया
 है।

माया ने मुझसे विवाह का प्रस्ताव किया है। उस सम्बन्ध की सब
 अनिकून-अनुज्ञात बातों पर हमने विचार कर लिया है और मैंने सब कुछ
 उमीयर छोड़ दिया है। वह एक होसनेमन्द औरत है। और मैं आशा
 करता हूँ कि उसे पत्नी के रूप में प्राप्त कर मैं अपने सब तक के अपूर्ण
 जीवन की पूर्णता को प्राप्त कर सकूँ।

बसना, बुझान बगवाही भी बगनी है, बह बह बग बगने ? बगनी बनी
 भी बह बगनी भी—बगबग बग भी बगनी है । बग नीम दिन
 हो बग, उब के बग बनी है, बह बगबग भी बनी है । बगना उबने नहीं
 बगना है । बह बग भी उबने बगनी बगना में नहीं बगना है । बगबग
 भी बनी है, बग भी बनी है । जैसे बह बग बुझानी हुई बगनी भी बग
 उबने बगनी बगबग बगनी बग बग बनी हो । बगनी भी बह बग बगनी
 है । बगने बह बगने बगनी भी बग बगनी है । बगबग बह बगबगनी है नि
 बगनी बगनी में बगनी बगनी है ।

उसी वक़्त से माया बननी पड़ी है।
उस वक़्त से वह हथोला मुझमें पड़ी—मेरी मूरहाइकी में बर्षों का
कागज़ छोर चंदों का झेंपकाग़ से रहना, माया का उगम नाम वर ने
बहुर दिनेषा के कहने कागज़ छोर बड़ी जान कोने ताग़ के मने में गुन
सौदना, केही के रोच-रोच करने का डाँटना-डपटना, हाथ तब रीच
बैटना—सो मैं बुर न रह सका। कुछ तो तब बाने गुनवर में घपने
दिवाग़ का संतुलन तो बैठा, छोर कुछ वह भी कलाग़ बिबा रि मुखाग़
बर्दाग़ कर लू तो केही क्या बहेली। मैं माया से उमझ बैठा। कुछ वक़्त
बाउ लही कि मैं तब मायना जानना लही। कई महीने रहने ही मैं बर्षों
छोर उसने छईध मजबूत को जाल भाग गया था, वर मुझे उस हालत
में क्या करना चाहिये था, यही तब न कर पाया था। बहुत बार मैंने
माया को समझना भी चाहा। वर मैं उसे समझने के दे सकता था,
वक़्त वह जाननी है कि मैं लूउ उसने प्रति बपादार नहीं हू। मुझे
एक ऐसा ही बी तो जान नहीं, छोर भी रिचियों से मेरे मजबूत हैं। इस
बाउ को छिपाने से क्या नाम है? नामवर माया से तो कुछ छिपा
नहीं है। ऐसा बी बाउ भी वह जान गई है। ऐसा एक बपादार छोरन
बी। परन्तु उसके म्हाह को तो सभी पाँच ही करत हुए थे। पाँच करत
बी बपादरी भया बर्दाग़ करत बी बपादरी का क्या मुखाग़ना कर
सकती है!

मिलती है !
 मैंने भागसे क्या समझी नहीं कहा था कि माया मेरे प्रति बाईस बरस
 बकादार रही । और बकादार ही क्यों ? कहना चाहिए एक सच्ची
 जीवन-संगिनी । जिसमें प्रथम श्रेणी की समझदारी, विद्वान्ताम्रता,
 साहस, हिम्मत और निष्ठा थी । इन सब बहुमूल्य मद्दतों
 के बिना मैं कभी भी इस जगत् में नहीं पहुँचता ।

मैंने देखा—उनका चेहरा राख के समान मैला और धुंधला हो रहा है। वे एक मामूली साड़ी पहने थीं। और अपने सब जेवर, हाथ की घड़ियाँ उतार दी थीं।... मैं ममी से लिपट गई। बहुत कहा—‘ममी, मेरे कुमूर को माफ़ कर दीजिए, मैं दंडो से जब कोई बात नहीं कहूंगी।’—लेकिन उन्होंने कुछ जवाब नहीं दिया। एक बार मेरे सिर पर प्यार से हाथ केरकर, मुझे सीने से लगाकर वे चली गईं। वे चली गईं दंडी !”

इतना बहकर बेबी फिर दोनों हाथों से मुँह ढांपकर रोने लगी। मैंने अपने मन में कहा—तब तो यह माँ का दिम साफ़ ले गई है। एक हलकी-सी घाटा की झलक मुझे दिखाई दी। मैंने सोचा—मेरे लिए न सही, बेबी के लिए वह सौट घाएगी।

लेकिन तीन दिन बीत गए, वह नहीं आई। बेबी तीन दिन से रोती रही है। उसने कुछ भी नहीं खाया है। मेरा बसाल या वह बर्मा के घर गई होंगी, पर पीछे पता लगा कि वह अपनी एक सहेली के घर पर है। मैंने एक पुर्छा लिखा, केवल दो शब्द—‘माया, बेबी पर इस बंदर केरझी न करो। जब से तुम गई हो, वह न खाती है न पीती है, रो रही है।’

पुर्छा पड़कर माया आई। सीधी बेबी के कमरे में गई। बेबी की गोद में लिया, बहलाया, उसे लिताया-बिलाया। मैंने सब कुछ जाना-मुना। तबियत को नसल्ली दी—आखिर वह घा गई। मुझे ऐसा प्रतीत हुआ जैसे मैं फिर से जी उठा। वह दिन-भर बेबी के पास रही। मुझे घाटा थी कि रात को वह मेरे पास घाएगी और सब किस तरह मुलह की जाएगी—मैं मन ही मन इन बातों पर विचार करने लगा। पर वह शाम को मुझसे बिना ही मिले चली गई। बेबी ने कहा—वह सुबह फिर घाएगी। सुबह आई और दिन-भर बेबी के साथ रही। बेबी बहुत प्यार थी। मैं भी खुश था, शाम को मैंने माफ़िस से सौटकर उसके साथ घाय थी। इसके बाद उसने मुझसे बात की।

बात छेड़ते ही मैंने मुलह के मूड में कहा :

“मुझे बहुत परसोस है माया, उस दिन मैं गया बन गया, मैंने तुमसे बहुत सख्त बलाभी की। मुझे तुम माफ़ कर दो।”

उसने कहा, “बानी तुम उन बातों को वापस लेने को तैयार हो ?”

“रुका, रुका ! मैं जानक से कहूँ मुझे धारमोह है ।”

“धारमोह हा मरणा है मुझे, क्योंकि तुम एक कीमत, चाकुर
होना के धारमोह हा पर तुम उन बातों को धारमोह होने में लग्न हो ?”

“क्यों नहीं मे मरणा, बिनादूर काटिना भी मे कहें !”

“काटिना ना भी, मरना मर भी ना ही ?”

मैं । परमार्थ माता न मुझ की धार देना । परमार्थ धार मरना
भी । उमर कहा

“उमर ना मरना भी है । धार मैं जानकी हू, तुम उनके धार
करी मे करो मुझना का मरना हा ।”

“लेकिन मुझना मरना क्या है ?”

“यही कि मुझारी हा धारि के भी धारो उमर का बहुत धार
जानी हू । तुम मुझे धार म मुझ धारो मरना जाननी ॥ । उमर धारो
दूरी मरानी धार-मुझ पर धारमोह एक होकर धारो है । धार न मैं मुझे
धार न तुम मुझे धारो दे मरने हो । पर धार भी न होना ।”

“ना मुझ...”

“हा, मैं पर कहा रही हू कि धार हम धारि-धारो की धारि धारमोह
नहीं रह मरने । हमे धारमोह होना होना ।”

“लेकिन धार, हम धारि-धारो की धारि रह मरने हैं । तुम जाननी
हो, मैं मुझे धारो धार करना हू ।”

“धार की धार ना मैं भी धार कहा मरनी हू, पर उमर धार धार
मोहा नहीं है । धार यदि धार का धार उमरों हा धार करना है तो
धार धार के कि हमारी धारो धारो मरने रहे । एक-दुसरे को धार
करके हम धार मे एक धार का धारमोह मरने रह ।”

“लेकिन हम धारि-धारो की धारि क्यों नहीं रह मरने ?”

“उमर तुमने मुझा धारो तो मैं मुझा धार धारि धारो धारो
हूई । धार कि हमारे-मुझारे धारो कोई न धार ! पर धार तो धारो मे
मुझे जाननी हू, तुम मुझे जानने हा । हम धारो हो धार एक धारो के
धारो नहीं रहे । मुझे धारो धारो धारो हो है कि धारो की धार
तुमने धारो । बहुत धार मे मैं जाननी धार कि मुझारे धारो धारो
धारो मे रहने रहे हैं । मैंने धार को बहुत धारो धार कि धारि तुम

मर्द हो, मैं घोरत हूँ। मर्द ऐसा धावः करते ही हैं। पर मन्त
 धातम-सम्मान और निष्ठा जाय उठे, और मैंने तुमसे भाग की
 मेरे प्रति वफादार होकर रहना होगा। पर तुमने उसे हंसी में
 दिया। तुम्हारा ख्याल था कि पत्नी यदि पति से वफादारी की म
 तो यह रहन रहती-सी, बल्कि सब प्रकार से हास्यास्पद-सी बा
 पर मैं ऐसा नहीं मानती। मैं तो चाहती हूँ कि जैसे पत्नी पति के
 वफादार है, वैसे ही पति भी पत्नी के प्रति वफादार हो।”

“लेकिन माया, मैंने तुम्हें प्यार करने में कोई तमी नहीं की

“तुम सायर उस दुम की बातें सोचते हो, जब एक पति की
 स्त्रिया होती थी। वे सब उसके प्रति वफादार ही नहीं होती थी
 प्रता भी होती थी। उनके लिए पतिव्रत-धर्म की बड़ी-बड़ी क
 बनाई गई। पतिव्रत-धर्म के बड़े-बड़े माहात्म्य गढ़े गए। बड़े-बड़े
 जायों ने, समाज के निर्माताओं ने पतिव्रत के एक से एक बचक
 नियम बनाए, जिनमें एक पति के मर जाने पर उसकी घनेक स्त्रि
 जिन्दा उसकी विताओं पर फूफ़ दिया गया; और उन्हें सती क
 लोकोत्तर पतिव्रता की किम्वी दी गई।.....

“यह पतिव्रत-धर्म केवल स्त्रियों ही के लिए था, मर्दों के
 नहीं। मर्दों के लिए चाहे जिसनी पत्निया ब्याहने, बिना ब्याह
 चाहे जिसनी दासियों, मौदियों, रकेलियों से सहवास करने क
 थी। जिसपर भी उसके लिए वैश्याओं के बाजार थे, जहां सुले-
 भोग-विलास का सौदा होता था।... ”

“तब घोरत मर्द की दासी थी, मर्द उसका स्वामी था— इस
 में भी, परलोक में भी। समाज मर्दों का था, धन-सम्पत्ति, घर-ब
 मही स्वामी था, यह ज्ञानवान था, सामर्थ्यवान था। उसके लिए
 दुनिया थी। स्त्री तब उसके लिए उसके भोग की एक सामग्री थी
 समय स्त्रिया यह बर्दाश्त करती थी कि उनका पति दूसरी स्त्रि
 सहवास करे और वे उससे ईर्ष्या न करें। ऐसे दास्य-वचन भी मै
 हैं, जहां सौतों में ईर्ष्या न करना भी पतिव्रत-धर्म का एक धम
 गया है। जहां कोठी पति को कंधों पर लादकर वैश्या के यहां ले
 उसके सहवास की गुविधा करना पतिव्रता का धर्म माना गया

तुम क्या मुझसे भी धाँज बड़ी घाँता करते हो ? कोई भी पुरुष घाँज की स्त्री से यह माँगा कर सकता है ?”

“किन्तु माँया, सुनो तो—”

“ठहरो जरा, पहले मुझे ही अपनी बात कह सेने दो : एक और युग था—सामन्तो युग, जब पनि पत्नी के माना-गिता-गरिजनों को मौन के पाट उतारकर हरण करते थे और उन्हें उन पनिओं की एक-निष्ठ पत्नी रहना पड़ता था। कँमे वे रहती थीं, उन्हें प्रेम करती थीं, हम धाँजरूप की स्त्रियाँ इन बातों की कहाना भी नहीं कर सकतीं। अब तो पत्नी पति की सहचारिणी है, उसकी जीवन-साथी है। सुख-दुःख में, हानि-लाभ में वे दोनों बराबर के भागीदार हैं। अब वे यह नहीं देख सकतीं कि पति तो दूसरी स्त्रियों में सहवास करता रहे, और पत्नी उसके प्रति एकनिष्ठ रहे। यदि पति चाहता है कि उसकी पत्नी उसके लिए एकनिष्ठ रहे, बफादार रहे, तो उसे भी उसके प्रति बफादार एकनिष्ठ रहना होगा, अवश्य रहना होगा। स्त्रियाँ अब न पुरुषों की मालाति हैं, न भोग-मामसो, न दासी, न पतिव्रता। वे उनकी जीवन-साथी हैं, मित्र, और उनके व्यक्तित्व की पूरक हैं।”

“लेर, तो अब तुमने क्या करना विचार है, माँया ?”

“जो कुछ कि मुझे करना चाहिए था। सुख मई हो, तुमने प्यार को गौण बना दिया और विमान-वामना को प्रमुखता दी—इसीसे तुम भ्रमर की भाँति नई-नई कमी का रसगान करना पसन्द करते हो। मैं घोरन हूँ, प्यार को बड़ी चीज समझती हूँ। प्यार का धूम्य मुझे हाव है। मैंने अपना प्यार उन पुरुष को दिया है जो मेरे प्रति एकनिष्ठ हैं, बफादार हैं। ऐसी हानि न हम पनि-पत्नी की भाँति नहीं रह सक्ते। यदि ऐसा करने का हम बोंग रचें तो हम अपनी ही नहरों में गिर जाएँगे, घबने-घाँ ही मुक्त हो जाएँगे।”

“माँया, क्या तुम गीझे अपनी पुरानी जिन्दगी में नहीं लौट सकती ?”

“इस का उत्तर तो मुझी बरादा टीक-टीक दे सक्ते हो। क्या तुम ऐसा कर सकती हो ? अपनी मैं कहती हूँ कि मैं नहीं लौट सकती। मैं प्यार ने तिमबाड़ नहीं कर सकती, एक बार दिये दिया—उसे दिया।

जब तक वह वफादार है, उससे प्यार सोटा नहीं सकती ।”

“और यदि वह वफादार न निकले ?”

“तो प्यार का वह अधिकारी ही नहीं रहेगा ।”

“माया, मैं तुमसे एक संजीर बात कहना चाहता हूँ ।”

“कहो !”

“मर्द औरत से कोरा प्यार ही नहीं चाहता । वह चाहता है प्यार के साथ उसका यौवन-सौन्दर्य, उसका जवानी से भरपूर शरीर । मर्द की वासना स्त्री के शरीर में है, पर स्त्री को वासनापुरुष की शक्ति में है । पुरुष बड़ी उम्र तक अपनी शक्ति कायम रख सकता है, पर स्त्री बड़ी उम्र तक अपने शरीर का यौवन और रूप का जादू कायम नहीं रख सकती । इससे स्त्री यदि प्यार के मामले में पुरुष से स्पर्धा करे तो निश्चय ही उसे चाटे में रहना होगा । उसमें सामर्थ्य है, उसके पास साधन है, वह नित नये यौवन खरीदेगा और उनका उन्मोग करेगा ; परन्तु यौवन बीत जाने पर स्त्रियाँ घसड़ाप और निरीह रह जाएगी, उनका आश्रय छिन जाएगा, उनका घर मुटु जाएगा ।”

“यही भय दिखाकर मर्द चाहते हैं कि स्त्रियाँ उनके व्यभिचार को गहन करती रहें, और उनकी एकनिष्ठ बनी रहें । परन्तु तुम समाज के बदलते हुए संगठन को नहीं देख रहे । स्त्रियाँ भय जीवन-संग्राम में भी पुरुषों के साथ बराबरी की स्पर्धा करती हैं । स्त्रियाँ भय अपने प्यार की दुकान खोलकर ही बैठी नहीं रहेंगी—वे जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में पुरुषों के साथ रहेंगी । रही धामु और जीवन की बात, तो धामु के साथ ही माय प्रेम का स्वरूप भी बदलता रहना है । स्त्रियाँ पत्नी ही नहीं हैं, माताएं भी हैं, और तुम्हें जानना चाहिए कि पत्नी के प्यार की अपेक्षा माता का प्यार बहुत बड़ा है ।”

“माया, मैं अनुभव करता हूँ कि मैंने तुम्हें क्षति पहुंचाई है । तुम कहो, मैं तुम्हारे लिए क्या कर सकता हूँ ?”

“तुम मुझपर बेवफाई का इलजाम लगाकर मुझे तलाक दे दो । मुझे उधर न होगा ।”

“न, न, ऐसा मैं नहीं कर सकता । यदि यही करना है तो तुम्हीं मुझे लम्पट करार देकर तलाक का दावा कर दो, मुझे उधर न होगा ।”

माया

तलाक़ मजूर हो गया और राय से मेरा सम्बन्ध-विच्छेद हो गया। परन्तु पत्नी अपने परिवार में किस तरह घंसी हुई है, इस बात पर तो मैंने कभी विचार ही नहीं किया था। हकीकत तो यह है कि किसी स्त्री का पत्नी बनना एक ऐसी मानसिक दासता है जिसका मादि है न भन्त। लोग उसे सामाजिक दासता कहते हैं। पर मैं पहले मानसिक दासता की ही बात कहूँगी। अपने पति को—धी राय को—मैंने तलाक़ दे दिया। बड़ी मासानी से उनसे मेरी छोट-छुट्टी हो गई। अब न वे मेरे पति रहे, न मैं उनकी पत्नी। उन्होंने न मेरे काम में बाधा दी न मेरे विचारों में। बस कि वे मृत्यु तक मेरे पति रहते, मैं उनकी गोदी में सिर रखकर मरनी। वे एक प्रेमी, उदार और खुले मस्तिष्क के पनि हैं। उनकी सोहबत में आनन्द और स्वतन्त्रता दोनों ही हैं। चाईस वर्ष हम लोग दूध में मिश्री की भाँति मिल-जुलकर एक होकर रहे। हम दो हैं, या कभी दो हो सकने हैं, यह कभी मैंने न विचारा था। परन्तु जैसे भूचाल घाने हैं, उसका टूटती है, प्रलय होती है, मृत्यु घाती है, वैसे ही यह विच्छेद भी आ गया। यह अनिवार्य था—मेरी और उनकी, दोनों की प्रतिष्ठा और सर्वाश के लिए। कानून ने, समाज ने, बरसे ॥१॥ दृष्टि-कोण में मेरी सहायता की। चाईस वर्षों के संस्कारों पर भी मैंने काबू पा लिया। मैंने छाती पर धर की बनाकर ही यह काम किया था। और अब हम प्रत्येक वर्ष में पति-पत्नी नहीं रहे। परन्तु क्या बेबी भी अब मेरी बेटी न रही? यह बात तो न वह मानती है न मेरा मन मानता है। राय भी यह बात नहीं मानने। अब भी मैं बेबी की माँ हूँ, सच्ची माँ हूँ। कानून की कोई धारा, समाज का कोई नियम उससे मेरा विच्छेद नहीं करा सकता।

[illegible][illegible]

मिर्ज़े बेबी की बाग नहीं, घोर भी रिश्तेदार है। वे भी मुझे प्यार करने हैं, मेरी इज्जत करने हैं। कोई मुझे जाओ कहता है, कोई बुझा, कोई नाभी, काई नाई। घोर घाय से नहीं काई व शरम से वे रिश्तेदार मेरे ऐसे जिव हो गए हैं कि उन व मुझ-मुझ में मुझे बहुत बार हसता-रोता पडा है। उनमें से बहुतों को देखने ही मैं आनन्द से गदगद

हो जाती हूँ। बहूतों को बेबी के समान प्रिय समझती हूँ। वे सब सब छूट गए। वे सब सब पराये हो गए। सब उन्हें देखकर मैं मर्ब से मुस्करा नहीं सकती, उनपर अपनी समझा जता नहीं सकती। कहना चाहिए कि उन्हें देखकर सब शर्म से मुझे मुंह झिपा लेना पड़ेगा। सब नाते-दारियाँ सब सारम हो गईं। क्यों भला ? किस कसूर पर ? उन्होंने मेरा क्या बिगाड़ा था ? तलाक तो मैंने राय को ही दिया। इसी एक बात से मैं सब सम्बन्ध-बन्धन भी टूट गए। मेरी गुप्त की दुनिया उलट गई। परिवार की एक सदस्या थी मैं, सबके बीच जगमगा रही थी, सब छलककर धकेली रह गई। शोक, कितनी निराशाजनक, कितनी भयानक बात है !

लेकिन क्या भी क्या जा सकता है। कर्मा बहुत भले पादमी है। मुझे उन्हें देखते ही अपने जीवन के वे दिन याद आने लगते हैं जब मैं नई ब्याहकर राय के घर में आई थी। कर्मा जब मेरी बँसी ही सख्तो-बप्पो से भावभवत करते हैं, बात-बात पर प्यार जताते हैं जैसे कभी राय जताते थे, तो सब मन में बसो गुदगुदी नहीं होती। वह तो उठती हुई जवानी थी, प्यार का पहला दौर था। नया शरीर था, नई उमर थी, नया संसार था। जीवन की दुपहरी खद रही थी। सब तो वह बात नहीं है। दुपहरी सब डल रही है। प्रेम का तूफान तो कब का शान्त हो चुका। सब तो यह सब बीचलेबाड़ी मुझे हास्यास्पद-सी लगती है। सब तो मैं सोच रही थी कि एक प्रगाढ़-विश्वास, आत्मीयता, गम्भीर एकता और शान्त हड़ता—यह सब क्या एक दिन मे मुझे मिल जाएगा ? कितना शप, कितना त्याग, कितना मेम और विश्वास मुझे खर्च करना पड़ा था लगातार बाईस वर्षों तक, तब कहीं ये दिव्य वस्तुएं मुझे प्राप्त हुई थीं ! राय से—राय के व्यक्तित्व से उन सब बातों का सीधा सम्बन्ध न था। उनका सम्बन्ध तो उस सम्बन्ध से था जो पति-पत्नी-सम्बन्ध जुड़ने पर अपने-आप ही जुट जाता है। यह था परिवार-सम्बन्ध, जहाँ मेरा एक गौरवपूर्ण स्थान था, जहाँ मैं केन्द्र में बैठी थी।

किन्तु सब ? कर्मा से कभी मेरा विवाह-सम्बन्ध नहीं हुआ। कभी इस काम में छः मास लग आएँगे। लोक-मर्यादा ही कुछ ऐसी है। परन्तु इस समय का मेरा जीवन तो देखो, कैसा विचित्र बन गया है ! कहने

को सब न राख मेरे पनि रहे, न खर्चा पनि है। दोनों दुनिया की नजर में मेरे मित्र है। पर दो भिन्न प्रकार के मित्र। एक वर्गी है, जिनमें मैं दुनिया की नजर दिखाकर मित्रता हूँ, मित्रता के सम्बन्ध को प्रतिपादन करने प्राये होनेवाले सम्बन्ध को प्राजा और मरने पर। दूसरे हैं राख, जो जीवन-भर सब तक मेरे प्रगाढ़ भावों रहे—और सब विभुद गए, जिनमें फिर मिलने की जो भटकता है, हृदय दुनकता है। पुगनी वार्ने माद घाती है, रह-रहकर मन में टूक उठती है। पर कमकर मन को रोवती हूँ—उपर से मन केरती हूँ, पर सब मैं ही जानती हूँ कि इन दोनों ही मित्रों से दो भिन्न व्यवहार—राख से मुझ केर भेना, जिनके साथ एक होकर जीवन बीना और दुन के निकट जाना, जो घाती मेरे लिए नये हैं, ठीक-ठीक जाने-पहचाने नहीं हैं—किनता कठिन है, किनता दुस्मह है !

घच्छा, प्यार ही की बात लो। मुझमें क्यादा प्यार के सामाविक रूप को कौन जान सकता है ! मैं खोरत हूँ, पत्नी रह चुकी हूँ पूरे बाईस बरस, और मा हूँ उल्लेख बरस से—प्यार की वह विवेगी मेरे कोरे हृदय में ही नहीं, पारमा में, केवना में व्याप्त है।

सब तक मैं एक सच्ची औरत, सच्ची माँ और सच्ची पत्नी थी—केवल प्रेम के माध्यम से। प्रेम ही मेरी इन तीनों मचाइयों का मध्य बिन्दु था और लगानार बाईस वर्षों तक घनेकों कमीटियों पर कमा आकर मेरा यह प्रेम एक प्रगाढ़ भावना बन गया था—एक ऐसा भारी और उर्वर्यन्त माध्यम कि जिसपर मैं समझती हूँ, पूरी मानवता कायम रह सकती है।

परन्तु सब मैं एक नई बात सोच रही हूँ, जो सब तक मेरे दिमाग में नहीं आई थी, जिसके इस पशु को सोचन का मुझे घमो तक सबभर ही नहीं भाया था। वह यह कि जीवन में क्या केवल प्यार ही ऐसी महान वस्तु है कि जिसके लिए जीवन बदल दिव जाय, और ऐसा दुःसाहन दिया जाए जेना मैं कर चुकी हूँ ? सब मैं कुछ-कुछ समझ गयी हूँ कि ज्यों-ज्यों प्यार की प्रगाढ़ता बढ़ती जाती थी, और वह निलरता जाता था, तथा मरीर से हटकर भावना में, केवना में प्रविष्ट होता जाता था—त्यों-त्यों वह अपना एक नया रूप बदलता जाता था।

वह रंग था कर्नम्ब । सबमुख मेरा प्यार समूचा ही घोरन का भी, पत्नी का भी घोर नौ का भी प्यार न रहकर कर्नम्ब बन चुका था; कर्तव्य का रूप धारण कर चुका था । घोर उसीने मेरे इस जीवन में उत्तरोत्तर गरिमा, पवित्रता, आत्मविश्वास और हडता दी थी । उसने मुझे प्रेरणा दी थी कि प्यार केवल इन्द्रिय-वासनाओं को ही तृप्त करनेवाली वस्तु नहीं है, वह जीवन को समार के साथ हृदयात्मीयता के सूत्र में बाँधने वाला बन्धु भी है, जिससे समाज बनता है, जिससे समाज की निष्ठा बनती है, घोर जो समाज को मर्यादा में बाँधकर सम्प्रदाय के सच्चे रूप में प्रकट करता है । वह काम एक स्त्री या एक पुरुष का नहीं, सबका है । करोड़ों स्त्री-पुरुष युग-युग से प्रेम को प्रगाढ़-प्रगाढ़तर बनाते हुए इसी भाँति समाज के चिरस्थान निष्ठा के रूप को, सम्प्रदाय के निखार को प्रकट करने रहे हैं ।

अब उस प्यार का सावद मैंने दुःखयोग किया है, उसे फिर से इच्छियों के भोगों की घोर सपाने की राह पर निकल आई हूँ । परन्तु क्या अब फिर से नया जीवन भी मुझ प्राप्ति हो सकता है ? फिर से उन प्रसूद्ध उमंगों के लूकानों का मन में उबार उठ सकता है ? मैं तो बार्डिस बरस तक प्रेम की वासना का स्वाद तृप्त होकर पछा चुकी । अब उसकी सूख बहा है ? मैं तो उससे समझी पीढ़ी में जाकर मा भी हो चुकी । प्रेम का वह दारुण्य कर भी सब चुक-चुकाकर खरम हो गया । अब वह बाँसी कड़ी में डबाल कैसा ? छ महीने बाद मैं नई-नवेली बनने जा रही हूँ । भवे बहनों में सजघनकर, जैसा अब से बार्डिस वर्ष पूर्व मनी थी । भङ्गनाइया बजेंगी, मिठाइया खाई जाएगी, जहन होंगे । पर मैं अपना चेहरे की मुरिया कहा खिपाऊँगी ? अपने ठण्डे, दाम्त, तृप्त वातावरण में उल्टे रंग और गुदगुदी कहा से लाऊँगी ? बार्डिस बरस तक कहना चाहिए पूरी जवानी-भर जिम मोग के जीवन को छूटकर, तृप्त होकर मोग चुकी, उसके लिए अब नये सिरे से आकाशर, अनुपता और उमंग कहा से लाऊँगी ? इन सब बातों के लिए तो अब मेरी बेबी का कान था । अभी-अभी उस दिन तक हम दोनों—राय घोर में—उसके ब्याह की बातचीत करते रहे हैं । उन बातों में एक घानन्द, उछाह और आकांक्षा तो थी, पर अब भी क्या हम—राय घोर में—इस मुखद

विषय पर फिर बान करने ? छि-छिः, अब तो मेरा ही ब्याह होगा ।
घोर दावद बेबी उमे अपनी धार्मों से देखेगी ! ओफ !! मर्म के मारे
मैं मर न जाऊंगी ?

किन्तु अब तो मैं घर में बेघर होकर चौराहे पर घा लड़ी हुई हूँ ।
सारे सम्म संसार से बाहर—बहिष्कृत, घनेली । न मैं रिमोकी कुछ हूँ
न कोई कहीं है । क्या कहकर अब मैं समाज में घटना परिवर्तन ? नगर
में हजारों पुरुष मुझे जानते हैं । हजारों मेरी प्रणिष्टा करने में । श्री
राय एक प्रणिष्टित नागरिक घोर आधीगर है । उनकी प्रणिष्टा में मेरा
भी हिस्सा था । सम्भ्रांत महिलाएं उत्पत्तों में, समारोहों में बाव में
आकर मुझसे मिलनी थीं । हन-हंसकर पूछती थीं—बेबी कौनी है ? राय
कौने है—घोर मेरी धार्मों गर्व घोर आनन्द से फूल उठती थीं । पर
अब उन बातों से क्या ? अब तो मैं रिमोकी मुह दिखाना भी नहीं
चाहती । घर-घर मेरी चर्चा है, बडनामी है । बेबी महिलाएं, जो मेरे
सम्मान में धार्मों विद्यानी थीं, मुझे हरबाई कहकर मुह बिचकाती हैं,
पूणा करती हैं । भूषे-भडके कोई मुझे देख लेती है तो उंगली उठाकर
कहती है—यही है वह मावारा घोरत ! वे मुझे मावारा कहती हैं, हा-
जाई कहती हैं, मेरे चरित्र पर कचक लगानी हैं, परन्तु मैं जानती हूँ—
यह एक झूठ है । बेनफ, मैंने दुःसाहस किया है दूसरी स्त्रियां नहीं
करती—नहीं कर सकती । बुत्ताप पति के बरमिचार को सहनी हुई
घर में बैठी धामू बहाती रहनी है । काम, मैं भी वहीं भेड-झी लगी होनी
तो समझती । घोरत का जगम ही बुट-बुटकर मरने घोर सहन करने
के लिए होता है । सभी मर्द अपनी-अपनी घोरतों की छानी पर मूय
झमने हैं । इसमें नई बान क्या है । पर मैं तो उन घोरतों से भिन्न प्रकार
की हूँ । मैं यह कैसे बर्दाश्त कर सकती हूँ ? मैं घोरत को जान को न
केवल यही कि वह पुरुष के बराबर है, मानती हूँ, मैं यह भी मानती हूँ
कि वह पुरुष से बडकर है । मैं यह भी जानती हूँ कि नयाज का बाहरी
बन्धन बाधे जैसा हो, परन्तु जीवन में घोरत मर्द के अधीन नहीं है ।
मर्द ही घोरत के अधीन है ।

एक बान यह बही जा सक्ती है निर्गुणायनम्मान के नाम पर राय
को त्याग देना—उनसे संबंध बिच्छेद कर मेना मेरे लिए उचित ही

या, मैंने ठीक किया ; परन्तु अब मुझे दूसरे किसी पुरुष से विवाह नहीं करना चाहिए। एकाकी जीवन व्यतीत करना चाहिए। इससे लोगो की नज़र में मैं ऊँची उठ जाऊंगी। परन्तु इन शोच और सचर दलोंको को मैं क्रोधपूर्वक ठोकर मारती हूँ। इसका तो साफ-साफ यही धर्म है कि राय के अपराध का दण्ड मैं भोगूँ। राय के मार्ग से सब विघ्न-बाधा हटाकर मैंने उन्हें सुनकर मोड़-मड़ा करने के लिए छुट्टी दे दी, मुक्ति-पाथों की राह प्रशस्त कर दी, और अब मैं स्वयं मूर्खी पर टंगी रहकर, समाज के धर्म से बाटी जाकर अपना शेष जीवन व्यतीत कर दूँ !

ऐसा मैं नहीं कर सकती, क्योंकि मैं सबसे अधिक अपने ही को प्यार करती हूँ। अपने को मैं दुनिया में सबसे अधिक प्रिय मानती हूँ। कर्तव्य और निष्ठा के नाम पर मैं आत्मपीडा से भी विमूल नहीं होना चाहती, पर मैं आकाश ही निराशावाद, आत्मपीडा और निरीह जीवन को भी नहीं पसंद करती। मैं घोरत हूँ, और मुझे एक मर्द चाहिए। यह बात मैं अपनी आत्मव्यवस्था और हचि के अनुकूल नहीं कहती हूँ, न यह नारी-स्वभाव की बात ही है। अस्तव्य युग में जब सम्म समाज न बना था—नर-नारी शोन-मन्वन्ध में उसी प्रकार स्वयम्भ से जिस प्रकार पशु-पक्षी। प्रत्येक स्त्री मनवादे पुरुष से यौन संबंध कर सकती थी, उसे छोड़ सकती थी। वह किसी एक पुरुष से अनुपस्थित नहीं थी। परन्तु सम्मता की मर्यादा ने एक पुरुष के लिए एक स्त्री, और एक स्त्री के लिए एक पुरुष का बंधन लगा दिया। स्त्री में सम्मता और समाज के इस बंधन को मान्य करके मैं सम्मता ही की सीमा में अपने लिए एक अनुगत, प्रिय और अपनी पसंद का पुरुष मांगती हूँ। यह मेरा अधिकार है। इसे मैं नहीं त्याग सकती—किसी भी प्रकार से नहीं त्याग सकती।

आप कह सकते हैं कि अब जवानी बीत गई। गदहपक्षीसी खरब हो गई। उनरती उम्र है। अब ये सब बातें शोभनीय नहीं हैं। ठीक है। आप मेरी उम्र की सब स्त्रियों से यही बात कहिए। उन्हें उनके पतिधों में, परिवार में, परिजनों से बहिष्कृत कर दोड़िए तो मैं इस अभिलाषा को एक समाज का नियम मानकर स्वीकार करूँगी। यदि सभी स्त्रियों को उनके सामाजिक जीवन का आनन्द-योग करने का अधिकार है,

तो मुझे क्यों मरी है ? मैंने क्यों सा धरमाल किया है ?

इसके परिणाम विरलित के मुझे पता है। मैं स्वयं ने प्रत्यक्ष को
आपसी हूँ — पर इसका ज्ञान भी नहीं है कि स्वयं की वस्तुओं को
हो स्वयं ज्ञान और प्रत्यक्ष करने योग्य वस्तुओं को प्रत्यक्ष किया जाए।
ज्ञान ज्ञान उठने ही मैं स्वयं-स्वयं स्वयं करती हूँ, और भी मैं विरलित उठ
और नहीं देखती। यह बाद कहें कि मैं स्वयं को स्वयं हूँ, स्वयंविनी
स्वयं ज्ञान, स्वयं प्रयोगों को देखते हूँ, स्वयंविनी हूँ, अपने स्वयं को
दुर्भाग के परिणामित कर हूँ — जो स्वयं विनी स्वयं को स्वयं से ही स्वयं
हो सकता है, मुझे नहीं।

मैं समझने के लक्ष्योन्मुख चिन्तन पर पहुँची, प्रशिष्टा घोर अन्धकार के लक्ष्योन्मुख धारण पर पहुँची, घोर जीवन के सब प्राणियों की प्राप्ति चाहती। इस आत्मव्यमान घोर आत्मनिष्ठता के नाम पर मैं मानता हूँ, पति, पुत्र, प्रशिष्टा घोर समग्र त्याग है, उसे मैं चाहती हूँ — प्राण कहेगी, घोर उसकी प्राप्ति के लिए प्राणों की बाजी लगा दूँगी।

वर्मा एक विरोध पुरुष है, वह मैंने देखा है। एक प्रतिष्ठित नागरिक भी है। उनका प्रेम बलभीरु है और वे एक अद्वैतमय आत्मा हैं। वे उन उलझनों में पड़ चुके हैं जिनमें मर्द के लिए औरत स्निग्धता की नहीं, काम की बन्धु रह जाती है। ज्यों-ज्यों वे मेरे निकट आते गए हैं, मैं उनके प्रेम की गहराई और सच्चाई को परखती गई हूँ। पारम्य में मैं उनसे डरती थी, फिर उनके लिए मन में प्रेमभाव उत्पन्न हुआ और अब तो दशभाव भी है। वे मेरे लिए सब कुछ कर गुजरने पर सामर्थ्य हैं। फिर भी मेरा मन अब इस स्थान पर था पहुँचने के बाद कोप रखा है। इसलिए नहीं कि वर्मा मुझसे विश्वासघात करेंगे। ऐसा करने से मेरा क्रोध भी नहीं बिगाड़ सकते हैं। घाना हो या धय सो दोगे। मैं जानती हूँ — उन्हें मेरी धान्यकता है, भारी धान्यकता है। उनके जीवन में मेरी कभी है। वे समझते हैं कि मेरे द्वारा उनका जीवन पूर्ण होगा; और मैं जैसे राय क प्रति एकनिष्ठ रही, उनके प्रति भी रहूँगी — जब तक कि वे मेरे प्रति एकनिष्ठ हैं।

बहुत पुराने लम्बट वस्ति के होने हैं, जैसाकि राय हैं। उनकी वृष्टि

एक घोरत से नहीं होती । वे प्रेम में घोर वासना में अन्तर नहीं समझते ।
 उनका प्रेम वासना के सबेले पर नाचता है । पर वासना शारीरिक होती है
 घोर प्रेम मानसिक । वासना-यूनि के बाद ग्लानि उत्पन्न होती है ।
 पर प्रेम की न कभी पूर्ति होती है न इति, घोर न ग्लानि का समय पड़ता
 है । राय पति की हैसियत से भी घोरपुरुष की हैसियत से भी एक व्यक्ति
 है । दोनों ही उपयुक्त गुण उनमें हैं, परन्तु वे आदर्श नहीं हैं ।
 के साथ एक रुढ़ीवादी पत्नी का निर्वाह हो सकता था जिसका धर्म
 कोई व्यक्ति न हो, पर मुझ जैसी घोरत का नहीं जो अपने व्यक्ति
 और अपने मूल्य को जानती है । फिर भी मैं बाईस बरस उनके साथ
 रही । बर्मा आषाढ आदर्श पति प्रमाणित हो । उनका स्वास्थ्य बल
 राय की अपेक्षा अच्छा नहीं है, परन्तु मैंने उनके विलास में भी न घाव
 देखा है, न सम्पत्ति । उनके इसी गुण ने मुझे उनकी घोर याद
 किया है, और मैं अब पनि कप में उनका वरण करने पर आकांक्षी

रेखा

माया ने घामिर बर्बा मे गिरिमैरिज कर भी। गय ने उनके सम्बंध मे बहुत-बहुत जाने जो है। ऐसा प्रतीत होता है, राय का दिल टूट गया है। ये जरूर ही माया को प्यार करते थे। वह सब प्यार सब उन्होंने मुझे ही समझा कर दिया है, बचन मे भी पीर केन्द्रा से भी राय वही प्रमाणित करने हैं। मैं उनमे प्यार करती हूं या नहीं—यह मैं नहीं कह सकती। मैंने बहुत बार मन मे इस बात का उत्तर माँगा है—पर हर बार दिल धड़कने लगता है, उत्तर नहीं मिलता। फिर भी इनकी बात तो है कि जब उनके जाने का समय होता है तो एक विविध गुदगुदी मन में होने लगती है, और यदि जाने में जरा भी देर हो जाती है तो बेचैनी होने लगती है। ऐसा प्रतीत होता है जैसे जूरी चढ़नेवाली है। उनके जाने पर प्रसन्नता होती है, यह बात मैं नहीं कह सकती। शायद प्रसन्नता नहीं होती, भय होता है। किंतु भय किसे ? दत्त से ? नहीं, इन बात में वे पूरे सावधान हैं कि वे उसी समय आते हैं जब राय के घर में होने की सम्भावना नहीं रहती। फिर भी भय है। यह भय न मुझे दत्त से है, न राय से—घपने ही से है। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि मैं घपने ही से बोरी कर रही हूं; घपने ही को ठग रही हूँ। परन्तु उस भय के साथ एक अवस्था उत्तेजना भी, एक घातकम्पन भी मैं अनुभव करती हूँ। उनके संकशास में अवश्य मुझे एक आनंद मिलता है। उस आनंद की बात कही नहीं जा सकती है। उस आनंद में हर्ष नहीं होता—ताप होता है। वह न त्यागा जा सकता है, न ग्रहण किया जा सकता है। बहुधा मैं राय के जाने के बाद रोई हूँ, मन में प्रतिज्ञा की है कि कह दूंगी—नहीं, सब न घाया करें। पर मैं ऐसा नहीं कर सही, शायद कर सकती भी नहीं। मैं बेवस हो जाती हूँ। जैसे बीन की स्वर-

सहरी पर मस्त होकर नागिन सहराणी है—उसी भाँति मैं भी सहरा उठनी हूँ।

दत्त के संरक्षण में मैंने हर्षातिरेक प्राप्त किया है। वे सब बातें मुझे सब भी प्यार हैं। उन्हें याद करके मुझे सब भी रोमांच हो जाता है। मैं चाहती हूँ, दत्त के संरक्षण में फिर से वही अनिर्वचनीय आनंद, वही हर्षातिरेक, वही पूर्ण सृष्टि, वही निश्चित सुख प्राप्त करें; पर नहीं कर पाती। दत्त का सब तो सब भी मुझे जानबूझ है। वे पहले की अपेक्षा अब मेरा ज्यादा ख्याल करने हैं। नाराज भी कम कर दी है। प्रेमालाप भी करते हैं। सुख भी देने हैं। स्वीकार करती हूँ, गरीर-सुख देने की सामर्थ्य उनमें राय से बहुत अधिक है। राय की अपेक्षा वे सुन्दर भी अधिक हैं, बलवान भी अधिक और साधव प्रेमी भी अधिक हैं। वे मेरे हैं, मैं उनकी हूँ। उनके और मेरे मिलन में मैं कोई बाधा है, न भय, न रोकथाम है। जब वे निकट नहीं होते हैं, मैं उनका ख्याल करती हूँ। पर उनके निकट रहने पर राय की स्मृति मेरी चेतना को आक्रामक कर जाती है, आहत कर जाती है। उनके संरक्षण में मैं कहीं वन्य के समान घेर होकर पड़ जानी हूँ। उनकी किसी अभिलाषा में मैं बाधा नहीं देती, पर यह मैं देखती हूँ कि राय इससे संतुष्ट नहीं होते। उन्हें चाहिए मेरा आग्रह, प्रवृत्ति, प्रबल भोग की भूख। यह सब सब कहा है? कहाँ से मैं उन्हें ये सब समझ पवाये, जिन्हें पाकर मर्द की मर्दानगी कुतकृत्य हो जाती है, लुप्त हो जाती है?

मैं जानती हूँ, पुरुष का स्त्री में यह प्राप्त है। पुरुष दाता होने का कोरा दम्भ भी नहीं करता। वह प्रकृत दाता है भी। वह आरम्भ से स्त्री को लेना सिखाना है और जब स्त्री लेना सीख जाती है—सीख-कर वह अधिकधिक लेने की पानल हो जाती है, तो वह उसे देते समाता नहीं है। ज्यों-ज्यों देता है, उमकी मर्दानगी विकरती है। जो आनंद स्त्री को लेने में पाता है उसमें सहस्र गुणा आनंद पुरुष को देने में पाता है, और ऐसे भी सख्त माने हैं जब स्त्री इतना भोगती है कि पुरुष का सर्वस्व निकल जाता है, दे नहीं सकता है, तब भी वह राई-रत्ती सब कुछ दे डालने ही में चरम सुख की अनुभूति करता है।

इस दास्य से ही वह स्त्री के स्त्रीत्व को खरीदता है। वह मसिल

संसार मे विचरणा करता है, और स्त्री उसकी प्रतीक्षा मे प्रांखें बिछा बैठी रहती है, सातुर-स्वाकुल । दत्त सभी देने मे समर्थ है । बहुत समय है । देय पदार्थ उनके पास बहुत है । वे चांखाबुंध देने हैं । पर जो कुछ वे देने हैं वह मेरे इधर-उधर चारों ओर बिसर जाता है, मैं उसे समेट नहीं पानी हूं; जैसे पहने समेटती थी, पाकर हर्षित होनी थी—घब नहीं होनी हूं । दत्त जैसे यह सब देखने हैं । औरत यदि मर्द को मर्दानगी को मिर पर उठाकर उन्मत्त होकर हर्षनृत्य न करे, तो मर्द के दान का माहात्म्य भी क्या रहा ! मर्द दे और औरत उसे ग्रहण न करे, खैर दे, बिचरा पड़ा रहने दे, तो मर्द यह सहन नहीं कर सक्ते । देने की बचापंछा लेने में ही है । बिना लिए देना व्यर्थ है । लेने का सुख जहां नहीं है—वहां देने का सुख भी नहीं है । वही मैं देखती हूं । दत्त बड़े उत्साह मे मुझे देय देने हैं । बड़ा दुर्लभ है वह दान—ऐसा सौ में से एकाध स्त्री को भी मिलना दुर्लभ है । बिसे मिलना है वह कष्टकर हो जानी है, उसका मारीत्व घन्य हो जाना है । पर जब वे मुझे लेने में एकदम उदासीन देखने हैं तो वे भी उदास हो जाने हैं । और उनका वह प्रस्ताव भी कितना दयनीय है कि कभी-कभी मैं देखकर रो देती हूं ! अब गुमलखाने से उनके गुनगुनाने की आवाज नहीं आती । अब बिरलियों की कड़क और बादलों की गर्जना उनके हास्य मे नहीं दीख पड़ती । अब तो उनकी हंसी बरसाती धूप की आति साक्षर होनी है । ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे वे जीवन से थक गए हैं सभी से—इसी उम्र मे । यद्यपि सभी उन्होंने जीवन का भोग भोगा हो क्या है !

बहुधा वे प्रचुम्ब के साथ बातें करते-करने रात को सो जाते हैं, और सुबह उसे जगाकर उसकी मोठी-मोठी कानें सुनने हैं । वे सब पनि कम और निता अधिक बन गए हैं । पर मैं सावद न पसंदी रही हूं न माता । अब क्या समाप्त होना मेरा ?

राय घरने काम मे बहुत सावधान हैं । वे सदा अनुपम समय पर आते हैं । अब वे प्रातःकाल आने जाते हैं, प्रचुम्ब स्नान करा जाता है । नौकरों की मैं दो घण्टे की छुट्टी दे देती हूं, और स्वयं द्वापरां कम में चली जाती हूं । सभी वे आते हैं, चुपचाप, और मैं उनमें खो जाती हूं । बहुधा वे एक घंटा मेरे पास रहने हैं, पर इस एक घंटे मे कभी-कभी एकाध

बात होती है। बानचीन प्यार-मुहब्बत की नहीं, धामामो मिलन-संवेत
 की। घोर कभी वह भी नहीं। वे जिस तेजी से चुरचाप भाते हैं, उसी
 तेजी से चले जाते हैं। घोर उनके जाने के बाद उन्होंने जो कुछ दिया
 उसे बटोरने, सहेजकर रखने की चेष्टा करती हूँ। पर न बटोर सकती
 हूँ, घोर न सहेजकर रख सकती हूँ। वे प्यार देने हैं, मुँस देते हैं, तृप्ति
 देते हैं; पर उनके जाते ही वह प्यार भय बन जाता है, मुँस डंक मारने
 लगता है घोर तृप्ति प्यास को भड़का देती है। मन होता है—बप, सब
 नहीं चाहिए। पर उनके भाने की प्रतीक्षा में मैं पधमरी हो जाती हूँ।
 ऐसी प्रतीक्षा मैंने दत्त की कभी नहीं की। झूठ मैं नहीं जोतूंगी, दत्त की
 मैंने प्यार किया—बहुत—बहुत—बहुत। पर राय को न तब न अब।
 बहुत सोचा, पर भीतर से द्वार बंद मिला, प्यार की धारा बहना रुक
 सी। प्यार नहीं करनी हूँ तो क्या करती हूँ?—यह मैं नहीं जानती।
 इतनी दरफत प्रतीक्षा कैसे करती हूँ, यह भी नहीं बता सकती। घरने
 को कैसे उनके संक में सौंर देती हूँ, यह भी नहीं जानती। केवल इतना
 जानती हूँ कि यह सब करके मुझी नहीं होती, निरिबन्ध नहीं होती,
 तृप्त नहीं होती। मुझे लगता है, मैं घोर हूँ, मैंने अपने को ठग लिया है,
 घोर मैं प्रसाध-भक्षक कर रही हूँ। फिर भी उससे मैं अपने को बिरम
 नहीं कर पाती हूँ।

उन दिनों मैंने कहा, "यह सब हो क्या रहा है? इनका अन्त कहा
 होगा?" तो उन्होंने जवाब नहीं दिया। बड़ी बेर तक धामिनन में
 जकड़े बैठे रहे घोर फिर चल दिए। मैं माया की बात कहती हूँ तो लकी
 लम्बी साँस लेते हैं। कहा गई उनकी यह याचकता? पहले तो बहुत
 हसते थे, बातें बनाने थे, बड़े दिलचस्प धारमी थे। पर अब तो पत्थर के
 कुन हैं। बात, भाँकर टकराते हैं, पाल कर भाते हैं घोर चले जाने हैं।

मैं नहीं जानती कि दत्त को उनपर सन्देह है या नहीं—शापद नहीं
 है, शापद है। छुट्टी के दिन वे दत्त के सामने भाते हैं। तब पहले जैसे
 बुझल करने की चेष्टा भी करते हैं, पर वह बन नहीं पाता। अपनी
 पबराहट को वे प्रद्युम्न से मन बहुलाकर दिया लेते हैं। मैं भी तो मन
 उनसे बात नहीं करती। दूर ही रहती हूँ। क्या बात करूं भला? अपने
 को कैसे ठगूँ? इतनी प्रबचना कहाँ से साऊँ? मैं जानती हूँ—दत्त वही

[illegible][illegible]

नहीं सकती ? वह जगजाहिर हो जाता है । नहीं, नहीं, स्त्री पुरुष की समानता का दावा नहीं कर सकती । मैं अपने ही को देख रही हूँ न । मैं अभी से धरने को दया की मिथ्यादिन समझ रही हूँ—दत्त की दया की भी और राय की दया की भी । प्रकृत अपिकारिणी तो मैं प्यार की भी । प्यार दया मुझे मिला नहीं ? खूब मिला—दत्त का भी और राय का भी । पर अब, अब वह प्यार ही मुझे नाग बनकर डत रहा है । अब तो वह दया करके मुझे छोड़ दे, इसे नहीं यही मेरे लिए बहुत है ।

अब तो मुझे ससार से भय ही भय नजर आ रहा है । भय की काली छाया हर समय मुझे घेरे रहती है । चाहती हूँ, राय से खुलकर जान बूझ । नहीं तो उन्हें यहाँ न घाने दो कहूँ, सब सम्बन्ध तोड़ दूँ । उन्हें दिल से निजान केंकू । अभी हुआ ही क्या है ! अभी तो सब कुछ वैसे मे हो है । अब भी मैं सच्चे मन से दत्त को प्यार करूँ तो मैं निहाल हो जाती हूँ । परन्तु पता नहीं वह कौन सी जान मुझपर सवारी बाँध रहा है, कैसा नाम मुझपर व्यापा है कि मुझे प्रवास का सीधा रास्ता नहीं दीखता है । देखती हूँ कि जहर है, पर खाए जा रही हूँ । सब है—पान की राह किपननी होनी है । एक बार किससने पर फिर समझना मुश्किल है । अब तो दिल में धाव खा बैठे । मन में चोर घुस बैठा । शरीर में कलक का दाग लग चुका । मेरा नारो-जीवन मलिन हो गया, पत्नी की पवित्रता में खो चुकी । और जीवन की सीधी-सरल राह—सहस्राब्दियों में समाज के नियन्ता मनोविदों ने जिनका निर्माण किया था—छोड़कर मैं कटीली जगहों में बटक गई । कौन अब मुझे राह दिखाएगा ? कौन मुझे सीधी राह पर लाएगा ? कौन मेरा हिरो है ? कौन मेरा सहायक है ? अरे, मैं तो खुद ही अपनी दुर्गति बन गई । मैंने अपने ही हाथ से अपनी राह में कुएँ खोद लिए । मोहन में रेत मिला दिया, धंधरार जीवन को भ्राने में समेटता-सा था रहा है, भगवान ही जानना है कि भयान क्या होगा !

दीर्घायनी

[illegible]

दाई घपने हाथ से बाँधती थी। नया कमाल तब बर केब में रख देती थी, घोर जेने रस्सी में बंधी हो, इस तरह निची हुई दरवाजे तक पहुँच जाती थी। घोर जब उनके बापस घर घाने का समय होता था, उससे प्रथम ही गर्म-साखा नादता सँवार करती थी। मेरे बपड़े बदलती थीं बनरन ही से वे मुझे मुडिया की तरह सजाकर उनके सामने लाती थीं बस एक-उन्हींकी बात उनकी जवान पर रहती थी। सो अब वे इन तरा बली गई निर्मोही होकर।

मुझे घर सूना लग रहा है। बापा ने कहा भी - कोई दाई रख लो दाई भला क्या करेगी? अब तो पापा की तक जिम्मेदारी मेरे ही ऊपर है। पर ममी जैसी कुर्मी, चुस्ती घोर मुचझई मैं कहा से लाऊँ? मर्म ने तो लाइ-ध्दार में मुझे बिट्टी कर दिया था। पर मैं बापा को भल इस तरह निरीह-निराशित कैसे छोड़ सकती हूँ! मैं उन्हें भाकिस भेजकर कालिज जाती हूँ, घोर घाकर मचके रहने उनके लिए भावना बनाती हूँ। उनकी दूर बात का पूरा ग्यान रखती हूँ, पर फिर भी उन्हें पहले की भानि हँसा नहीं सकती, उनकी उदासी दूर नहीं कर सकती।

मात्र छुट्टी थी। पापा कहीं दौरे पर गए हैं। परतों मारेंगे। इससे मैं भी जरा डीली पड़ी हुई थी। ममी की याद कर रही थी घोर कभी-कभी एकाध घामू घा जाता था। उते योंही बौछ सेती थी। योंही बैग-जीन के दाने पलट रही थी। बकस्वाल् ही घाकर उन्होंने मुझे घपने बकगान में बाध दिया। पहले तो मैं बचरा गई। बाद में उन्हें देला नमस्कार दिया। परन्तु उन्होंने मुझे थोडा नहीं। गोद में लिए बैठी रही जेने बच्चे की लेकर मा बैठती है। किन्ता बन्दा लगा मुझे, क्या कहूँ!

उन्होंने हँसकर कहा, 'घनेली बैठी किजरी याद कर रही थी बेबी।'

"मागकी!" मैंने भी हँसते हुए कहा।

"मच? ममी की नहीं?"

"घाव मेरी ममी हैं!" व जाने जहाँ से एक लीज मन से बाह निकल घाकर जवान पर बैठ गई ममी की याद से घोर मेरे मूह से घा बापव निकल गया। उन्होंने झुनकर मुझे धूम लिया। माहिस्ता से कहा - 'काज, मैं तुम्हारी ममी होती! किन्तो प्यारी बिटिया हूँ तुम! कैं

तुम्हें सोनहर करी गई तुम्हारी बही !” मेरी छातों में दाग लगेगा।
क्या ? तुम्होंने दाग तो लगे ही क्यों

“तब तो तुम्हें मुझे बही यह ही दिना !”

“तब मेरी बही है, इतना प्यार तो सभी ही कर सकती है।” मैं
कहा और तब वह बहने में आती मुझसे बात की।

इसके बाद बहुत ही बर्तन हुई। मैंने पहिले तब के गल्ले में
गो। मैं मोर-मोरकर तुम्हें लगी, “कभी तुम्हारे पास भी बहने
है तुम्हारी बही को, मेरी !”

मैं बहा जगह मेरी भवा ! मैं बह हो गई। तब ही तब तुम्हें
का मैं जैसे बहुत उतक हो रही थी। तुम्हें-तुम्हें फिर तुम्हींकी बातें
करती थी। उन्होंने कहा, “तब तुम्हारी बही तुम्हारे पास तो बहुत
प्यार करती थी ?”

“घोर, बहुत” “बहुत !”

“घोर तुम्हें ?”

“तुम्हें भी !”

“फिर ऐसी तुम्हें बिटिया, ऐसे बह घोर तब को छोड़कर मैं बही
करी गई ?”

मेरा मन तुम्हें मैं सब बहा वह तब तुम्हें। भवा मेरे तब इन
बातों का बहा जगह था ! तब भीने-भीने उन्होंने मुझसे तब को बहुत
बातें जान लीं। तब सभी को दाद करके रोने हैं। तब को देर तक मौने
नहीं हैं। जीवन तो हर बात में उदासीन हो गए हैं। मैं सब सुनती रही।
तुम्हारे सुनती रही। फिर उन्होंने एकएक तुम्हें, ‘बही, तुम्हारे पास
का भवा घोर भी कोई प्यार करना है ?”

मैं उनका मुह मानने लगी। मेरी सबभ में तब नगे पाई।

उन्होंने कहा, “यदि कोई उन्हें उनका ही प्यार करे तबना तुम्हारी
सभी करती थी, तो तुम उसे बहा बहोको ?”

“मोह ! मैं भी उन्हें प्यार करूंगी। तब सभी जैसा प्यार तब का
कीन करेगा ?”

“यदि मैं करूं ?”

मैंने सबबबाहर उनसे मुख की घोर देखा। वह सात हो रहा था

घोर घालें सावन-भादों के बादलों की भाँति बरी हुई थीं। मैं कु
घोर कुछ न समझी। 'भोह' कहकर उनकी गोद में पिर गई।

घोर तब उन्हें नि सोलकर गब कातें मुझे धीरे-धीरे बता दे
मैंने दुनिया नहीं देखी थी, पर मैं उनकी बातें सब समझ गई।
जान गई कि पापा उन्हें प्यार करते हैं और वे पापा को प्यार प
इस काम में कुछ बाधाओं की घोर उन्हीने लकत किया जिन्हें
समझ सकी। पर प्रेम-प्यार की बातें सब समझ गई। सुनकर
कटू, पारसका, उड़ैव मेरे घन में उदाम्न हुआ। घन्त में उन्ही
'बेबी, तुमने मुझे ममी कहा है। भाग्य ने तुम्हें ममी की गोद
दिया है। मैं जानती हूँ, तुम्हारी ममी के जाने का तुम्हें भी मय
तुम्हारे पापा को भी है। घोर यह तुम बच्ची नहीं हो—
समझती हो। जैसे भाग्य ने तुम्हारी ममी से तुम्हारे पापा का
कया दिया, उसी भाँति भाग्य ने मुझे उनसे मिला दिया। बहुत
मैं सोच रही थी कि मैं तुमसे यह बात कह दूँ। तुम्हें तो मैंने उ
एक बार देखा था जब तुम मेरे घर गई थीं। निम्न उसी एक
के बाद मैंने तुम्हें कभी नहीं भुलाया। घोर जब तुम्हारे पापा
घनिष्ठता बढ़ी, तो मेरे मानस में यह एक तीव्र भावना उत्पन्न
मैं तुम्हारी ममी बनने जा रही हूँ। कैसे आश्चर्य की बात है।
मुझे ममी जान मिला! अब मुझे एक बात बताना—वही बात
मैं तुम्हारे पास आई हूँ।”

“भाप पूछिए।”

“यदि मैं उस घर को छोड़कर तुम्हारे घर आ रहा, तो
विषय में क्या स्थान करोगी?”

“भाप मेरे घर में कैसे आ रहेंगी?”

“जैसे तुम्हारी ममी वहाँ साहब के घर पर आकर रहीं।

“लेकिन उन्होंने तो पापा को ललाक दे दिया और उनसे
ली।”

“मैं भी दत्त को ललाक दे दूँगी और तुम्हारे पापा में
लूँगी।”

“हे भगवान! ऐसा भी कही हो सकता है।”

"यदि हो सके, तो कुम्हारों को वर दे कुम्हारों, सभी कुम्हार का यज्ञ,
मैं कुछ कर सकूँगी।"

"तो दानों को स्वीकार करनी होगी, मैं दानों को स्वीकार करनी।" वेनी
सोचती है। दानुदों की बातें वह अपनी दाँतों में दूबती गई है और वह

सुनीलदत्त

क्या रस्ता क्यासार घोरत नहीं है ? लेकिन मैं यह कैसी बाहियान मान सोच रहा हूँ ! मुझे अन्दी में कोई निरुपेय नहीं देना चाहिए । सब बातों पर धन्यो तरह सोच-समझ लेना चाहिए । धानिर यह सवाल मेरे मन में क्यों परकरता जा रहा है ? केशक रस्ता के व्यवहार में अब खमीन-घासमान का अन्तर हो गया है । पर इसके दूसरे स्वाभाविक कारण भी तो हो सकते हैं । धानिर वह अब एक बच्चे की भी माँ है । हमारा ब्याह हुए अब की साल बीत रहे हैं । अब मैं अपने एक नई-नवेली स्त्री की भाँति व्यवहार की घारा कैसे कर सकता हूँ ? फिर उसका प्यार अब पति-पुत्र में भी तो बंट गया है । क्या मुझे मुनासिब है कि मैं बेटे से ही ईर्ष्या करूँ ?

लेकिन वह मेरे लिए एक ठण्डी घोरत है । मेरे स्पर्श से उसमें नारीत्व का जागरण नहीं होना—उलटे वह निकुड़ जाती है, छुईछुई की भाँति । उसका धाविमन भी अब सशोक नहीं रहा । उसमें अब न 'मा' है—न 'हा' है । जैसे वह एक परवर की निर्मोब धूनि है । जैसे उसकी रंगों में मूँ नहीं है, पानी है । वह कभी उत्तेजित नहीं होती । कभी उसकी चेष्टा में कभी नहीं आती । परन्तु वह एक रोग भी तो हो सकता है । हाँ, हाँ, वह एक रोग है । बहुत स्त्रियों को वह रोग होता है । वे ठण्डी होती हैं । मैं इस सम्बन्ध में बहुत धन्यो तरह शिचार करता रहा हूँ । मैं न मूढ़ पुरुष हूँ, न धूर्त । मैंने सभी बातों पर वैज्ञानिक विवेचन किया है ।

निस्सन्देह नर-नारी का वैध सम्भोग ही विवाह का उद्देश्य है । वैवाहिक जीवन की सबसे बड़ी सफलता 'बराबर की जोड़ी' है । मैं जानता हूँ कि सम्भोग की मान अवस्थीन और घृणास्पद सभी जाती

है। घोर विवाह के समय भी मे एक भी जादा सम्मोह-मंत्रणो ममानता की बातों पर विचार नहीं करना। घोर हमका यह परिणाम निकलना है कि विवाह एक धोमे की टट्टी प्रमाणित होना है। विवाह के बाद या तो जन्म ही पति-पत्नी में विच्छेद हो जाना है, या कलह के बीच बचने है, या दोनों में से कोई एक या दोनों ही परस्त्रोगाभो घोर पर-पुष्ट-गामी हो जाने है। समय घोर मुष्किल उनमें यह सब नाम करानी है। वही पुरुष का अनिरेक होना है और वह बनात्कार की सीमा तक पदुष जाना है। तब वे घगर कष्ट पानो है, और अमाध्य गेगों की गिकार हो जानी है। कुछ सामाजिक स्थिति हो ऐसी है कि स्त्री को पति की इच्छाओं में विवश होकर दामी बनने को छोड़ दूसरा मार्ग ही नहीं रह जाना। वह यदि क्लगदा करती है तो पति अन्य पतिना स्थियों से सर्वत्र सम्बन्ध स्थापित कर लेता है, जो एक नये बनेश का कारण बन जाता है। मैं ऐसे बहुत-से पुरुषों को जानता हूं। उनमें अनेक प्रनिष्ठित और मुशिसित पुरुष भी हैं।

निस्मंरेह पुरुष बलान् स्त्री से उनकी इच्छा और आवश्यकताओं की परवाह किए बिना सम्मोग नहीं कर सकता। यदि करे तो वह स्त्री के लिए एक क्षेय का कारण बन जाएगा। उममे स्त्री को किसी भी प्रकार का मुक्ष प्राप्त न होना, और वह विकट स्नापुरोगों का गिकार बन जाएगी। इनके अनिरिक्त ऐसी क्षान्त में—उनने जाहे जिनना प्रेम हो—उसमें विरक्ति के बीच उय आएगे। और उनमें वह तहरी एक्का, जिसकी दोनों के लिए बड़ी आवश्यकता है, नहीं उप्पन्न हो सकती। मैंने इन सब बातों पर विचार किया है, इनको साथ-हानि पर दृष्टि दी है। इसीमे मैं धनने को पात्रु में रखता हूं। रेखा की दकि घोर इच्छा के विपरीत बनात्कार नहीं करता हूं। परन्तु मैं एक स्वम्य पुरुष हूं। पत्नी में एकनिष्ठ हूं। मेरे मन में जब स्त्री को भूष जागरित होनी है, तब मेरी आवश्यकता की पूति होनी चाहिए। वह पूति रेखा नहीं करती। इन्हीसे मेरे मन में यह संका उठती है कि वह ठण्डी है। परन्तु वह पहले तो ऐसी न थी। मैं जानता हूं, कुछ स्थिया स्वभाव से ठण्डी होती हैं। कुछ विथाम न मिलने से ठण्डी हो जाती हैं। ऐसे पुरुष बहुत हैं जो इस क्षान की परवाह नहीं करने कि सम्मोग में उनकी स्त्री उनकी सपिनो और

हिस्सेदार है भी या नहीं। ऐसे वे सोच होते हैं जो स्त्रियों को बच्चा पैदा करने की मशीन समझते हैं बहुत-सी स्त्रियाँ कीज-संकोच के कारण अपने मनोभाव प्रकट नहीं करती और वे पति के सच्चे सहवास-मुख से वंचित रह जाती हैं। वरन्तु रेखा के सम्बन्ध में तो ये बातें नहीं हैं। पहले वह मेरी सच्चे अर्थों में बराबर की माँगीदार थी, पर अब नहीं। अब उसे क्या हो गया है। कोई रोग है या कोई और बात है ? मुझे पता लगाना होगा। इसीसे उस दिन मैंने उससे इस सम्बन्ध में बातें की थीं। पर उसने एक मूसा-सा जवाब दे दिया कि उसे कुछ भी नहीं हुआ है, वह ठीक है। पर ठीक कहा है ? फिर यह कहाँ उससे कहा मैं उत्पन्न हो गई है ? मैंने उसे डाक्टर के महा चमने को कहा, पर उसने इन्कार कर दिया। वह अब घबरा पर घाते ही सो जाती है। बहुधा वह प्रसुम्न के माथ सोना पसन्द करती है। मेरा प्रेमालाप तक अब उसे महसूस नहीं है। वह मुझे क्वाई से झिड़क देती है। उसका कहना है कि अब हम नवदम्पति नहीं रहे और हम कामुकता की बातें या घेँटा नहीं करनी चाहिए। मैंने ध्यान से देखा है कि उसके मन में विरक्ति और घासों में घुलने के से भाव उभरते चले जा रहे हैं। जितना ही मैं उसे निकट लाना चाहता हूँ, वह दूर भागती है। ऐसा प्रतीत होता है, उसे अब मेरी मायव्यवस्था ही नहीं रह गई है।

अन्ततः मैं चिकित्सक के पास गया। सब दृष्टीकृत प्रधान की। उसने मुझे उसके लिए कुछ घीघघ दी और कहा कि मुझे धैर्य में काम लेना चाहिए, सच्चा प्रेम प्रकट करना चाहिए, रोमल व्यवहार से उसे प्रसन्न रखना चाहिए। इस तरह धीरे-धीरे उसका ठन्दा मन पिघलेगा। शरीर में जिन तत्वों की कमी है, उनकी पूर्ति घीघघ करेगी।

मैं स्वीकार करता हूँ, कभी-कभी जब मैं उसे अपने निकट निर्जीव-सी पड़ी देखता हूँ तो मुझे शोष घा जाता है। पर बिड़ने और शोष करने से क्या होगा ? बारीकी से उसका सही कारण ढूँढना होगा। मैंने उसे घीघघ दी, उसने उसे नहीं खाया। एक अवज्ञा की नजर मुझपर डाली।

वह कहती है कि वह ठीक है, रोगिणी नहीं है। मैं भी अब घड़ी समझता हूँ। तब उसकी इस घोर विरक्ति का कारण क्या है ? यदि वह

है। घोर विवाह के समय सौ में एक भी जादा सम्भोग-संबन्धो समानता को बातों पर विचार नहीं करता। घोर इसका यह परिणाम निकलता है कि विवाह एक घोमे की टट्टी प्रमाणित होना है। विवाह के बाद या तो जल्द ही पति-पत्नी में विच्छेद हो जाता है, या कलह के बीच बमने हैं, या दोनों में से कोई एक या दोनों ही परस्वोयामी घोर पर-पुरुष-यामी हो जाते हैं। समय घोर मुजिबा उनसे यह सब काम कराती है। यहीं पुरुष का प्रतिरेक होना है घोर वह बलात्कार की सीमा तक पहुंच जाता है। तब वे अगार कष्ट पान्ते हैं, घोर अमास्य रोगों की शिकार हो जाती हैं। कुछ सामाजिक स्थिति हो ऐसी है कि स्त्री को पनि की इच्छाओं से विषय होकर क्षामी बनने को छोड़ दूसरा मार्ग ही नहीं रह जाता। वह यदि झगडा करती है तो पति अन्य पत्निता स्थितों से सर्वथ संबन्ध स्थापित कर लेता है, जो एक नये स्नेह का कारण बन जाता है। मैं ऐसे बहुत-से पुरुषों को जानता हूं। उनमें अनेक प्रशिष्टित घोर मुनिक्षित पुरुष भी हैं।

निस्संदेह पुरुष बलान् स्त्री से उनकी इच्छा घोर आवश्यकताओं की परवाह किए बिना संभोग नहीं कर सकता। यदि करे तो वह स्त्री के लिए एक स्नेह का कारण बन जाएगा। उसने स्त्री को किसी भी प्रकार का मुख प्राप्ति न होगा, घोर वह विरट स्त्रायुरोषों का शिकार बन जाएगी। इसके अनिरिक्त ऐसी हानत में—उनमें चाहे जितना प्रेम हो—उसमें विरक्ति के बीज उन पार्ने। घोर उनमें यह गहरी एका, जिसकी दोनों के लिए बड़ी आवश्यकता है, नहीं उत्पन्न हो सकती। मैंने इन सब बातों पर विचार किया है, इनकी लाभ-हानि पर इट्टी दी है। इसीमे मैं पत्ने को काबू में रखता हूं। रेखा की पति घोर इच्छा के विपरीत बलात्कार नहीं करता हूं। परन्तु मैं एक स्वस्थ पुरुष हूं। पत्नी में एकनिष्ठ हूं। मेरे मन में अब स्त्री की सूच जागरित होती है, तब मेरी आवश्यकता की पूर्ति होनी चाहिए। वह पूर्ति रेखा नहीं करती। इसीमे मेरे मन में यह पंच उठती है कि वह ठण्डी है। परन्तु वह पदने तो ऐसी न थी। मैं जानता हूं, कुछ स्थिवा स्वभाव से ठण्डी होती है। कुछ विधाय न बिचने से ठण्डी हो जाती है। ऐसे पत्नी-पति की परवाह नहीं करने

दिलीपकुमार राय

जितनी ही चीलवनी होनी है उतनी ही वह संवेदनशील होनी है । जितनी वह संवेदनशील होती है उतनी ही भावुक होती है । जितनी वह भावुक होती है उतनी ही प्रेमवती होती है । जितनी ही वह प्रेमवती होती है उतनी ही भावही स्वभाव की और मानवती भी होती है । गभीर भावुक, एकनिष्ठ और प्रेमवती स्थिरा मानवती दृष्टा करती है ।

प्रेम मन का एक अत्यन्त कोमल और संवेदनशील भाव है । उस का संबंध चेतनाशक्ति के सबसे अधिक शक्तिसम्पन्न और प्रवाहमय केन्द्र से है । इसलिए अत्यन्त कोमल प्रभाव जो स्त्री से पुरुष पर और पुरुष से स्त्री पर आता है, वही सर्वाधिक शक्तिशाली होता है । इस नायक तप्य की साखी करोड़ों नर मारी नहीं जानते । कोमल, भावुक, प्रेमवती स्त्री तनिक-सी भी तो पश्यता—कठोरता—को नहीं सहन कर सकती । कामावेग बेकाफ कठोर आघात चाहता है । कामावेग में स्त्री चरम सीमा का कठोर आघात भी सह सकती है । कहना चाहिए, उसकी क्षमता करती है—पर तन का ही, मन का नहीं । कामावेग से प्रथम प्रेमावेग का उद्धार आता है । कहना चाहिए, कामदेव प्रेमावेग पर ही सवार होकर आते हैं । स्त्री प्रेमावेग में अतिशय भावुक, अतिशय नायक हो जाती है । उसकी सम्पूर्ण चेतनाएँ संवेदनशील बन जाती हैं । इसलिए वह प्रेमावेग में एक बाल बराबर की भी कठोरता-पश्यता सहन नहीं कर सकती । उस समय का पुरुष-मन का तनिक-सा भी पुरुषभाव उसे विरत कर देता है ।

रति प्रेम और काम दोनों ही का सार है । रति में स्त्री का विरत होना मना कैसे सह्य जा सकता है । रतिकान्त में विरत स्त्री तो है ही नहीं, स्त्री की साज है । कौन पशु साध के साथ रति कर सकता है !

दिलीपकुमार राय

स्त्री जितनी ही शीलवती होती है उतनी ही वह संवेदनशील होती है। जितनी वह संवेदनशील होती है उतनी ही भावुक होती है। जितनी वह भावुक होती है उतनी ही प्रेमवती होती है। जितनी ही वह प्रेमवती होती है उतनी ही धाग्रही स्वभाव की और मानवती भी होती है। सभी भावुक, एकनिष्ठ और प्रेमवती स्त्रियाँ मानवती हूँ।

प्रेम मन का एक व्यस्त कोमल और संवेदनशील भाव है। उस का संबंध चेतनाशक्ति के सबसे अधिक सतिसम्पन्न और प्रवाहमय वेग से है। इसलिए अत्यंत कोमल प्रभाव जो स्त्री से पुरुष पर और पुरुष से स्त्री पर होता है, वही सर्वाधिक शक्तिशाली होता है। इस नायक तथ्य को साक्षों करोड़ों नर नारी नहीं जानते। कोमल, भावुक, प्रेमवती स्त्री तनिक-भी भी तो पक्षपात—कठोरता—को नहीं सहन कर सकती। कामावेश केतक कठोर घाघात चाहता है। कामावेश से स्त्री चरम सीमा का कठोर घाघात भी सह सकती है। सहना चाहिए, उसकी कामना करती है—पर तन का ही, मन का नहीं। कामावेश से प्रथम प्रेमावेश का उद्धार होता है। कहना चाहिए, कामदेव प्रेमावेश पर ही सवार होकर घाते हैं। स्त्री प्रेमावेश में सतिसय भावुक, सतिसय नायक हो जाती है। उसकी सम्पूर्ण चेतनाएँ संवेदनशील बन जाती हैं। इसलिए वह प्रेमावेश में एक क्षण बराबर की भी कठोरता-पक्षपात सहन नहीं कर सकती। उस समय का पुरुष-मन का तनिक-सा भी पुरुषभाव उसे विरत कर देता है।

रति प्रेम और काम दोनों ही का सार है। रति में स्त्री का विरत होना मना कैसे सह पा सकता है। रतिकाल में विरत स्त्री तो है ही नहीं, स्त्री की साज है। कौन पशु साज के साथ रति कर सकता ॥ ।

इसलिए रति का प्राण भावातिरेक है। भावातिरेक से ही रति सच्चि-समागु बनती है। सप्राण रति ही स्त्री को सम्पूर्ण प्राप्त्य देती है और पुरुष के पौरुष को कृतकृत्य करती है।

मैं नहीं जानता कि आप मेरी बात को ठीक-ठीक समझ भी रहे हैं या नहीं। आप जानते हैं या पत्नी—मैं यह नहीं जानता, पर मैं इतना कह सकता हूँ कि दाम्पत्य जीवन में आप रति के समुद्र में बितनी ही बात उभर दूब धुके हैं, पर रति का लाभ भी आपको प्राप्त हुआ है या नहीं, उस दुबकी में आपके प्राण-स्फुरण में दाम्पत्यातिरेक का मौती मिला है या नहीं, यह मैं नहीं कह सकता। जिस ही स्त्री-पुरुषों को वह मौती मिलता है। बटुओं को नीप मिलता है और बटुओं के साथ घोषे हो रह जाने हैं।

बहरहाल पुरुष और स्त्री के पारम्परिक सम्बन्ध में भेष की उपेक्षा नहीं की जा सकती। मिलनितरी का परस्पर आकर्षण स्वाभाविक है। बटुया वह आकर्षण प्रकट रहता है। और जब वह आकर्षण किसी परस्त्री और परपुरुष के बीच धर्म के रूप में होता है तो बड़ी कठिन समस्याएँ या उत्पन्न होती हैं। जिनसे सबसे बड़ी रसमय की एवं रतिनाश की समस्या है, जो इनसे बड़े अपने और दुःसाहस को ही समाप्त कर देती है।

मैं चाहते यह बात नहीं छिपाता चाहता कि मेरा तरीका-सम्बन्ध अधिकांशता मजबूतों के भी रहा। परन्तु चाहते यह बातें यह जानकर धारण हो सकता है कि पुरुष ऊपर से हुई। आप देखने ही हैं कि मैं कोई पुरुष पुरुष नहीं हूँ। अपने को मैं सुन्दर कहने का भी साहस नहीं कर सकता। परन्तु मैं यह भी इतना पूर्वक कह सकता हूँ कि कायोप-नाम में अधिकांशता मजबूतों ने मोर्च देवती है, न चाहु, न प्रेम। वे देवती हैं वह प्यास जो नेत्रों में उन्हें देखने हो भटक उठती है और जिनके मुख में दिव्यमैत्रिज आकर्षण होता है। मैं समझ सकता हूँ कि किसी भी बड़ा प्राण सुन्दरी लक्ष्मी को देखकर मेरी छाँवों में बड़ा प्यास भरक उठती है। और मैंने अक्सर की छाँवों के आकर्षण में उभरा तिकार अपने पास ही बाहर उभरने लड़ में मचा जाता है, वे लक्ष्मी मुखमें मचा उठती हैं। बटुओं का मैं दुश्चारा हूँ, धारणात्मक कहना है, परन्तु वे

हमे घरे घरणी में गिरती हैं। यह एक नैसर्गिक आत्मवर्ण है, जहाँ
 हो जाती है, सास कर छोटी उम्र की होने के कारण। मैंने
 कियों की मनोवृत्ति को देखा है। उनका मन न घर के काम-काज
 है, न पढ़ने-लिखने में। वे घर के सोपों के अनुशासन को भी
 नहीं। देखने में वे सर्वथा उदासीन और घरसिन्धी लगती हैं।
 चरलता या विनोद की माया भी नहीं होती। वे भिन्न-
 की प्राप्ति के लिए भीतर से बेचैन रहती हैं। और इसके लिए
 भी नहीं कहा जा सकता, क्योंकि उनके रक्त में मन्दर कुछ विशेष
 न विविष्ट प्रणियों के निचोड़-स्वरूप मिसते रहते हैं। मैं ऐसी
 को पहचान लेता ॥ और एक ही प्यासी नजर उन्हें मेरी गोद
 डालती है। बहुत कम मुझे उनसे प्रेमाभिनय करना पड़ता है।
 इसकी तनिक भी आवश्यकता नहीं पड़ती।

रन्तु रेखा का मामला इन सब लक्ष्यों से भिन्न है। वह एक
 हिता पत्नी है। उसका पति उसकी बगल में जोड़ी का है। वह
 और स्वस्थ है। वह उससे पूर्णतया प्रेम करता है तथा उसकी
 सम्बन्धी आवश्यकताओं को भी पूर्ति करने में समर्थ है। भिन्न-
 कोई भी कारण ऐसे नहीं है जो रेखा को किसी पुरुष की ओर
 र्पित करें। इसीसे मेरी नजरों का बार उसपर साँझी था—
 तब वर्षों तक। उसने मेरी ओर सेवा-भावना से एक बार भी
 उठाकर नहीं देखा। अपने पति की भाँति ही वह अपने पति की
 करती थी। अपना तन-मन उसने अपने पति को सम्पूर्णरूपेण
 दे दिया था। स्त्री की हैसियत से भी और पत्नी की हैसियत से
 जहाँ तक सेवा का सम्बन्ध था, वह अपने पति से सन्तुष्ट थी।
 मैं विचार था—रतिभाव पर। स्त्री शरीर-सहवास के साथ जिस
 विकास की आवश्यकता का अनुभव करती है वह दत्त से उसे
 नहीं हुई। दत्त इस सम्बन्ध में घनाड़ी और घसाघसा व्यक्ति
 वह प्रेम की केवल मन का और सहवास की शरीर का विषय
 है। जैसे वह प्रेम में परिपूर्ण है, वैसे ही सेवा-पूर्ति में भी पूर्ण-
 है। पर वह प्रेम और काम के सन्तुलन का ठीक न बनाए रख
 जिससे रेखा का रतिभाव बँग हो गया। उसमें विरक्ति का भुर

जग साया । मैंने उसे देखा और ठीक समय पर उसे रतिदान दिया और उसे जीत लिया । अब वह मेरी है ।

विवाह एक आत्मिक सम्बंध है और शारीरिक भी । वैवाहिक जीवन की मायबना तभी है जब शारीरिक संबंध आत्मिक सम्बन्ध में परिणत हो जाए । स्त्री-पुरुष का एवं पति-पत्नी का साहचर्य तभी पूरा हो सकता है । परन्तु दत्त जैसे गढ़े-लिये मूर्ख इस मर्म की बात को नहीं जानने । विवाह के पाँच वर्ष बीत जाने पर भी रेखा और दत्त का शरीर-सम्बन्ध आत्मिक सम्बंध का रूप परिणत न कर सका । रेखा उनके लिए छुटपट्टानी रही और दत्त ने उधर ध्यान ही नहीं दिया । सामान्य में उसे इस महत्व की बात का ज्ञान ही नहीं है । वह अपने को एकनिष्ठ और कर्तव्यपरायण पति तो समझता है, पर उसने रेखा को अपना समर्पण तक एक बार नहीं किया । नहीं तो क्या रेखा जैसी पत्नी मेरे हाथ में सकती थी ? वह तो मुझे एक मनमय लाभ दृष्टा, रेवन दत्त की मूर्खता के कारण । परन्तु प्रकृष्टा दत्त ही ऐसा मूर्ख नहीं है । हजारों, लाखों, करोड़ों पति ऐसे ही मूर्ख होने हैं और अपनी मूर्खवान पत्नि को गंवा बैठने हैं ।

पुरुषों ही की भाँति कुछ स्त्रियाँ भी मूर्ख होती हैं । वे अपने प्राप्तव्य को नहीं जानती, और समझती हैं कि अपना शरीर पुरुष को दे देना एक तरह का धर्म्य है । इसने में उन्हें उरा-सा स्पर्श-सुख भी प्राप्त हो जाता है । पर वही थोड़े ही स्त्री का प्राप्तव्य है ! जैसे हमारे पुत्राय पति की सुख-सुविधा के लिए उसे करने पड़ने हैं, वह भी एक काम उसके सुख के लिए कर डालती है, इसमें भी उसे उतनी ही ध्यान प्राप्त होती । जितनी घर के दूसरे कामों में । इसीसे उसे इस कार्य में अभि-यक्ति और भासक्ति नहीं रहती, और रतिभाव का उदय ही नहीं होता । ऐसी स्त्रियाँ शीघ्र ही सहवास को घृणित और बड़ा काम समझने लगती हैं, और पति से विरक्त हो धार्मिक भावना-प्रधान हो जाती हैं ।

परन्तु यदि स्त्री सचेदनशील है, और उसे अपने प्राप्तव्य का पूरा ज्ञान है, तब जान ही दूसरी हो जाती है । ज्यों-ज्यों उसमें अपने प्राप्तव्य के लिए अभिलाषा और साधना जागरित होती जाती है, वह अपने पति


और विरक्त होती जाती है । इस स्त्री में और उस स्त्री में न का अन्तर रहता है । पूर्वोक्त स्त्री पति से नहीं, महान

करती है। पर यह स्त्री सहवास से नहीं, पति से घृणा करती
 किती भी चतुर पुरुष को ऐसी स्त्री को अपनी सपेट में भगट
 न सकेगा हम तरह भिन्न जाता है। रेखा का मामला सर्वथा
 है।

रमान रहना चाहिए कि पत्नी कोई बेरवा नहीं है, जिससे पुरुष
 ने मुख की प्राप्ति करे। उसका अनिवार्य कर्तव्य हो जाता है
 स्त्री को भी उसका प्राप्तव्य सम्पूर्ण मुख दे और पहले दे। यदि
 नहीं करता है तो उसका प्रेम चाहे जितना महान हो, उसका
 को के बराबर भी मूल्य नहीं पाँचा जा सकता। यौन-मिलन
 शारीरिक मिलन हो नहीं है, बिना बहुत मानसिक मिलन के वह
 सम्पूर्ण नहीं हो सकता। और यह शारीरिक मिलन-नाश का
 क मिलन ही वैवाहिक जीवन की सफलता का सबसे बड़ा सूता-

1
 जीवन एक वार्षिक सत्य है, और जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में हमारा
 एक दृष्टिकोण होना चाहिए। वह दृष्टिकोण ऐसा हो जो नैतिक
 कताओं के व्यावहारिक कर्मों को अपनाए, जिससे व्यक्ति और
 दोनों का विकास हो।

हम समाज में प्रेम का अति बाहुल्य देखते हैं। वह प्रेम सबको पर
 हमें दीख पड़ता है। परन्तु प्रेम इतना सस्ता और सुगम पदार्थ
 है। प्रेम जेतना का सबसे कोमल उद्भूत है, और उसका प्रकट स्वरूप
 है, जिसका प्रभाव जीवन के सामाजिक, धार्मिक और व्यक्तिगत
 पर पड़ता है।

शरीर धारण के लिए हमें बहुत कष्ट भेनना पड़ता है। परन्तु
 ही से हम चरम मानस की प्राप्ति भी प्राप्त कर सकते हैं। और
 न करें भता? जब हम सारे दिन बठोर परिधम करके मानसिक
 से ज्ञात और दुश्चिन्ताओं से लड़े-से घर लौटें तो क्यों न नर्म-
 मानस का मुख प्राप्त करें? शरीर-मुख की यह लासला कोई बुरी
 नहीं है। और मैं, मैंने तो मुख लेना नहीं, देना ही अपना ध्येय
 लिया है। यही मे  र्मसार की सफलता की कुञ्जी है। इसीने
 है। एक दस्त है उसका पति जो उससे अनि-

बच तीस मुस सेना रहा, पर उसे भी कुछ देना चाहिए इस सर्व्वत्र में
लापरवाह रहा। और जब उसने मुझे पाया जिसका ध्येय मुस सेना
नहीं देना ही था, तो वह इस नई अनुमति को पाकर घागे में न रह
सकी। उसका सारा शीत, संकोच, निष्ठा घोघी में उनके की भाँति
उड़ गई, और वह समूची ही तन-मन से मुसमें समा गई।

दिलीपकुमार राय

द्वैतममता ॥ कि मैं तलवार की धार पर चल रहा हूँ। किसी भी क्षण मुझे उन सतरों का सामना करना पड़ सकता है जो जीवन-मरण की समस्या के कठिन क्षणों में घा उपस्थित होते हैं। ये तो जीवन की टेढ़ी धारें हैं, जिनमें ठोकर खाकर गिर पड़ने की संभावना होती ही है और आज दत्त ने सतरों की चंदी बजा दी है। वह कई दिन से घूट रहा था—वह मैं प्रत्यक्ष देख रहा था। 'घोर की दाढ़ी में तिनका' वही बात है। मैं घोर तो हूँ ही। मैं उसकी विवाहिता पत्नी का जार हूँ। यद्यपि मैं यह बात स्वीकार करने से इन्कार करता हूँ कि मैंने उसे पच-भ्रष्ट किया। मैं प्रथम ही स्वीकार कर चुका हूँ कि पहली ही दृष्टि में मैं उस पर चरमिदा था। मेरे मन में यह भावना उदय हुई थी कि वह मेरी है, मेरे लिये है। पर मैंने उसपर कभी भी यह भाव प्रकट न होने दिया; दत्त की मित्रता के नाते भी और रैला के धोस से भयभीत होकर भी। परन्तु फिर दुरभिसंधियां आईं, जब वह अपने प्रति के व्यवहार से मनम्युष्ट हुई, लौजी घोर दुःसिद्ध हुई। मैंने उससे सहानुभूति का मार्ग अपनाया। घोर धीरे-धीरे चतुराई से उसकी खोज को कोप में और दुःख की बदला लेने की इच्छा में बदल दिया। प्रकट में मैं जहाँ उसकी प्रत्येक भावना से सहानुभूति रखता था वहाँ दत्त का भी परम हितैषी घुम-बिक्त बनता था। पर सदैव मैंने उसके मन में दत्त के विरोधी भावों का बीज बपन किया।

दत्त उसपर मन्याय कर रहा है, वह समझ है, मनैतिक है, धर्मवर्धक है—यही मैंने उसपर प्रकट किया। धीरे-धीरे उसके मन में दत्त ने प्रति विरक्ति के भाव उत्पन्न हो गए। परन्तु यह संवेष्ट न था। उसके मन को मैं दत्त के प्रति घोर घृणा से भर देना चाहता था। उसके

हृदय में घनाह्र वेव था दम के लिए—दफना रिगीनें की लिए, जो उगना गति होता । वह एक जीवनीय मर्जितता जाती थी । उन्मर्जित की निरुता उगनें थी । वेवन कोय, मोन कोय अवस्थान ही से उगनें मन में परगुण का प्रवेश हो जाना—ऐसी कड़कोर चीज बचपन मन की जो बड़ न थी । मुझे उगनें प्यास की धाराधरणा थी—वेवन उगनें मन को ही मैंने मर्जी चाहा, मन को भी धाराना मैंने चाहा ; और वह न कफ मग्गव नहीं था प्रवतक कि मैं पूर्णकालेन उगनें मन की दम के प्रति पुना और किमिद से न भर दु ।

इसमें मुझे समय लगा । कौनसे दम में वेवन एक ही वृत्ति की बि बड़ पाररवाह स्थिति था । निमर बड़ मराव का अगन करना था । पर वह अगन तो मैं भी करना हूं, परन्तु मैं नावधान पुन ॥ । दम भी यदि सावधान होना तो मुझे मरगना न विचनी ।

परन्तु रैला के कहने हुए दम पर दत्त की विन्ता उगम्ल हुई है, जो स्वाभाविक ही है । रैला में बड़ धाना प्राणम्य मर्जी वा रहा है, जिसका कि वह अवस्थ है । वह मुम्हार मग्देह नहीं करता है, इसीमें उस विन उगनें मुम्हमे रैला के सम्बन्ध में जानें थीं । परन्तु नावद वह मुम्हमे मीधी रैला की बावनीन करने का माहम नहीं कर सका । इसलिए उगनें पहले माया का प्रसंग उठाया । उसने कहा :

“तुमने कभी भी पहले माया के सम्बन्ध में कोई मिवादन नहीं की थी । माया बहुत ही मरुटी रही थी—फिर क्या कारण हुआ कि अपने मुम्हारा सम्बन्ध-विच्छेद हो गया ?”

मैंने पहले इस बात की हुंमकर दास देना चाहा । पर वह सोच सोच-पूछता रहा । मैंने कहा :

“बड़ी विचित्र और खरीली वस्तु है यह विवाह, जहां मनुष्य प्रेम करने और आत्मसमर्पण करने को विवश हो जाता है । विवाह का अर्थ ही है एक अनाधारण सम्बन्ध । हिन्दू-धर्मग्रन्थों में व एक अर्थों में विवाह का अर्थ है—स्त्री-पुरुष का जन्म-जन्मान्तरो के लिए एक-दूसरे से अटूट सम्बन्ध ।”

जन्म-जन्मान्तरो की बात सुनकर दत्त को हुंसी आ गई । पर वह वह विस्प्रसिद्ध हुंसी न थी जिसमें ठहकों के साथ आनन्द

बिखरता था। यह तो एक स्त्री-भूषी हंसी थी। उसने हँसकर कहा, "जन्म-जन्मांतर की बात थोड़े छोड़ो राम, इसी जन्म में निभाव हो जाए तो मनीमत है।"

मेरे मुँह नहने के प्रथम ही उसने कुछ गम्भीर होकर कहा, "माया ही की बात से लो। यह न कोई नई-नवेली स्त्री है, न बेसमझ है। बड़ी सम्यक्सिद्ध औरत है वह; पर उसे हो बना गया, जो वह इस तरह चली गई?"

"इसका मैं इसके प्रतिरिक्त और क्या कारखु बता सकता हूँ कि यह माधुनिका है—पुरानी हिन्दू-परम्परा को नहीं मानती।"

"पुरानी हिन्दू-परम्परा क्या?"

"मैंने कहा न कि हिन्दू-धर्मानुशासन की दृष्टि से स्त्री एक बार विवाहित होकर जीवन-भर पति से विच्छेद नहीं कर सकती। यही नहीं, वह पति के मरने पर भी उसकी विधवा रहेगी, और वह विश्वास रखेगी कि जब उसकी मृत्यु होगी तो स्वर्ग या पतिलोक में उसे वही पति मिलेगा, जन्म-जन्मान्तरों से वही उसका पति होता भाया है।"

इस बार बल को हसी नहीं आई। उसने ठनक गम्भीर होकर कहा, "तुम भी क्या इस झूठी बात पर विश्वास करते हो राम?"

मैंने हँसकर कहा, "मैं तो स्त्री हूँ नहीं, इसलिए मेरे विश्वास-अविश्वास करने से क्या होता है मला? पर यह बात मैं जरूर कहूँगा कि स्त्री को यदि ऐसा ही विश्वास रहे तो मैं उसे पसन्द करूँगा।"

"क्यों पसन्द करोगे तुम इस झूठी बात को?"

"झूठी-सच्ची बात से हमें क्या मतलब है। हमें तो बही जान पसंद आती है जो हमारे साम की होती है। मैं तो इस विश्वास की धमली किल्ल को भी पसन्द करता हूँ।"

"धमली किस्त कौन-सी?"

"यह कि विवाह के बाद हिन्दू पति या स्त्री पर एकात्म स्वाभिरव हो जाता है। और पति मृत हो या जीवित, स्त्री बान्धव हो या विवाहिता, हर हानत में उसे मन, वचन, कर्म से उसी पति के सर्वदा अनु-दधिन, अनुप्राणित और आत्मापित रहना पड़ेगा।"

"और पति? क्या पति पत्नी के प्रति अनुबन्धित नहीं होगा?"

“जी नहीं, हिन्दूधर्म पनि को स्त्री के प्रति अनुवर्णित नहीं करना। हिन्दू-धर्मानुबन्धन में पनि एक या घनेक इसी प्रकार में पुरानुवर्णित पत्नियां रखने हुए भी सर्वथा स्वतन्त्र रूप में अन्य वैध या धर्मेव अनुगित पत्नियां बिना पत्नी की स्वीकृति के रख सकता है। यहाँ तक कि वह वेदया घोर धर्मनिराखी स्थियों से भी मुक्त सहवास कर सकता है।”

“बाहिषात बात है ! धात्रकन की स्थियां बना वह मंत्र स्वीकार कर सकती है ? घोर धर्म तो कानून भी ऐसे बन गए हैं कि मित्रों पर कोई ऐसा दबाव नहीं डाला जा सकता। घोर वे अब चाहें सभी विन्धेद कर सकते हैं।”

“तो वस, वस कानून की ही करामात में माया ने समाक दे दिया घोर पत्नी गई।”

“लेकिन बार्डन धर्म के साम्राज्य का जग करके ?”

“बीस बरस की जवान कुमारी मदनो को भी छोड़कर। जैसा धमत्कार रहा मिस्टर दत्त, कि बेटी ने मा का विवाह अपनी धाँवी में देखा।”

“लेकिन क्या तुम वह मन्त्र हो—इस मामले में तुम निर्दोष हो ?”

“बोध-निर्दोष की भी धलन-धलन ध्याम्या है। दोष या धरता जैसा हलका-भारी होता है—दण्ड भी वैसा ही होता है। उगर्षी उगर्षे के धरता में फाँसी नहीं दी जाती।”

दत्त उस समय धायद धाने दुःख में दुःखित थे, इसलिए उन्होंने मेरे इन शब्दों से मेरे मनसाध को देव लिया। उन्होंने महानुभूति। स्वर में कहा :

“तुमने यदि मुझमें कहा होगा तो धायद में तुम्हारी महारा करला—उम्हें सम्भाता-बुभाता।”

“यह मंत्र काम तो मैंने भी लिया।”

“तो क्या कुछ ऐसे सम्भीर बारण या उपस्थित हुए कि तुम सफगता नहीं मिली ?”

धर्म मैं बना बरत देता। मैंने कहा, “मिस्टर दत्त, बहुत-सी बातें जो कही नहीं जा सकतीं। बूढ़-बूढ़ तालाब भरता है, उरा-उरान प्रतिकूल बाने बहुत बहनी बन जाती है। धारम्य में जोधन कल्पना

घोर भावुक प्रवृत्तियों को पूंजी बनाकर स्त्री-पुरुष में प्रेम-व्यापार चलता है। पर बहुधा उन कल्पनाओं घोर प्रवृत्तियों के तार बीध हो में टूट जाते हैं तो वह प्रेम का लेव-देन ही बेबल मन्द नहीं हो जाता, विरक्ति घोर पूर्ण की सीढ़ियों की भी सहन करना पड़ता है; और उनसे घबराकर स्त्री-पुरुष में जो साहसी होता है वह भाग खड़ा होता है, जो कम साहसी होता है वह मर मिटता है। और सब तो यह है कि प्रेम का जीवन बड़ा जटिल है। सम्भव है, पत्थर-युग में जब मम्पना का पारंभ या प्रेम सरत रहा हो, पर सब सम्भ्रता के विकास में इसे जटिल बना दिया है। और सब मनुष्य आपसी से उठते भार को सहन नहीं कर सकते।”

“क्या तुम समझते हो राय, कि स्त्रियों की इतनी स्वाधीनता समाज के लिए हिनकर है? मैं पुराने युग की रुढ़ि का समर्थन नहीं करता, पर साधारण कारण से प्रति-पत्नी का विश्वास क्या उचित है? फिर यह भी तो सम्भव है कि जो कुछ समझा गया है वह भ्रमपूर्ण भी हो सकता है।”

“बहुधा होता भी तो ऐसा ही है। परन्तु धात्र की स्त्री को हम वाचकर नहीं रक सकते।”

“परन्तु इस तरह तो जीवन ही अस्त-व्यस्त हो जाएगा, समाज की एकनिष्ठता खत्म हो जाएगी।”

“हो जाए, पर व्यक्ति-स्वातन्त्र्य सबसे बड़ी वस्तु है। यह धात्र के युग की सबसे बड़ी मांग है।”

“क्या तुम कह सकते हो राय, कि स्त्री विश्व-वाद से लुप्त हो सकती है? तुम तो बाईस वर्ष के अनुभूतिकार पादपी हो?” उसने फिर उसी प्रकार की-की हसी हसकर कहा।

मैंने कहा, “इसका तो कोई एक निश्चय नहीं प्रतीत होता, परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि स्त्री-पुरुष की एकता के बीच शरीर की अपेक्षा मन की महत्ता अधिक है। मानसिक शोध उनकी अन्तः एकता में शायक है। जितना से मानसिक स्तर सब स्त्री-पुरुष दोनों ही का ऊपर उठ गया है। इसलिए मनोविचार और मनस्तुष्टि शरीर-स्तुष्टि में अधिक महत्त्व रखने लगी है।”

“शायद सम्भव युग में ऐसा न था।”

“शायद न था, शायद था—कुछ ठीक नहीं कह सकता, पर एक बात कह सकता हूँ कि कुछ बातें हैं जो स्त्री-पुरुष दोनों को एक-दूसरे के प्रति आकर्षित करती हैं। इनमें मानसिक कोमलता और आत्मार्पण की भावना सर्वोपरि है।”

“फिर भी कोई निश्चित बात नहीं कही जा सकती। बहुत स्त्रियाँ अयोग्य, निर्दय, दुराचारी पतियों से भी प्रसन्न और सन्तुष्ट रहती हैं। बहुत सद्गुणों को पसन्द करती हैं। बहुतों को भावसे भी प्रिय नहीं होता। पर कुछ पुरुष चमत्कारिक होने हैं, जो कष्ट स्त्रियों के प्रिय बन जाते हैं। उन पुरुषों की मूर्च्छापूर्ण चेष्टा पर भी स्त्रियाँ प्रसन्न हो उठती हैं।”

“क्या तुम प्रेम के सम्बन्ध में कुछ अधिक जानते हो राय?”

मुझे दत्त के इस प्रश्न पर घनाघाम ही हुई थी था गई। यह एक विद्वान, स्वस्थ, तरल पति का प्रश्न था। मैंने कहा :

“क्यों? आपने क्या कोई अच्छी फिल्म यात्राएँ नहीं देखी है? प्रेम की बहुत-सी अच्छी जानकारी उनमें होती है।”

“नहीं, नहीं, मजाक की बात नहीं। सचमुच ही मैं तुमसे पूछना हूँ कि क्या स्त्रियाँ प्रेम से भी खूब नहीं होती?”

“लेकिन आप मेरा उत्तर सुनकर मुझे बेवकूफ बनाएँ!”

“नहीं, नहीं, तुम कहो भी तो।”

“हाँ, तो मुझे, पारमार्थिक प्रवृत्ति ही प्रेम है।”

“पारमार्थिक प्रवृत्ति से प्रेम का क्या सम्बन्ध है?”

“जब समझ भीजिए, दोनों एक ही हैं। साम कर औरत के मामले में।”

“अरे भाई, तुम तो पहेलियाँ बुझाने लगे। साफ बात क्यों नहीं कहते!”

“आप साफ ही सुनना चाहते हैं तो मुझे। स्त्रियाँ कोरे मातृक पसन्द नहीं करती। वे तो उसी प्रेम को पसन्द करती हैं जिसमें

“...भीषण आक्रमण किया हो।”

सुनकर दत्त चुन हो गया। वह किसी गम्भीर चिन्ता में

हूँ गया। मेरा हृदय धड़कने लगा। मुझे ऐसा प्रतीत होने लगा कि अब कोई वरुणाक्षत मेरे ऊपर होने वाला है। परन्तु उसने शांता-संयत स्वर में कहा, "क्या सबकुछ धीरे-धीरे इस कदर कामुक होती है?"

"क्या आपने सुना नहीं, घोरत में पुष्प से झाँठ पुनी काम की भूल होती है?"

"हो, गुना तो है। पर आपने झाँठ बरस के वैवाहिक जीवन में मैंने यह बात प्रत्यक्ष नहीं देखी। पर पुष्प पायद ठीक कहते हैं, क्योंकि तुम्हारा अनुभव चाँदनी बरस का है। लेकिन राय, यदि माया के चले जाने का यही कारण था तो तुमने अपने इलाज कराने में क्यों सावर-बाही की?"

मेरा मुँह धीरे से लाल हो गया, घोर मुझसे इसका जवाब देते न बना। यद्यपि यह एक आकस्मिक घोर सहन सहानुभूति का ही प्रश्न था, पर मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि जैसे दस्त ने मेरे मुँह पर एक करारा समाया मारा हो। मैं अभी कुछ धवाव सोच ही रहा था कि दस्त ने कहा, "राय, तुम्हारी यह व्याख्या गलत भी हो सकती है।"

मेरा मन हो रहा था कि मैं अब यहाँ से भाग चलूँ। न जाने प्रश्नोत्तर कीन-सा दस्त पकड़े घोर में सन्देह का पाव बन जाऊँ। यह हाश्ट था कि इस समय दस्त की नजर में रेखा का विपरीत उदासीन आचरण धिरेक रहा था और उसी भाव-भावस्थ में प्रश्न कर रहा था। अब मैंने भी गम्भीर स्वर में कहा, "हो सकता है कि मेरी यह प्रेम-व्याख्या गलत हो, क्योंकि अन्तर्गत मैं एक विकल पति हूँ।" दस्त ने एक गहरी साँस ली और कहा, "राय, ऐसा प्रतीत होता है कि सभी पति विकल पति होते हैं। किसी स्त्री का पति होना एक चांदे का सौदा ही है।"

इतना कहकर वह उठ खड़ा हुआ। उसने अपनी सहानुभूति से मेरा हाथ पकड़कर कहा, "चाँदनी राय, विश्वास करो, तुम्हारे लिए मैं बहुत दुःखित हूँ। समझ रहा हूँ कि तुमने माया के विषय को सहन करने में अपरिशील धैर्य का परिचय दिया है। मैं अपनी यह सकता हूँ कि कहीं यदि मुझे रेखा को इस तरह खोना पड़ जाए तो मैं जिन्दा न रह सकूँगा।" उसने मुझे नमस्कार कहा। मैंने कुछ जवाब न देने ही में कुशल समझी और प्रतिनमस्कार करने चला गया।

सुनीलदत्त

बड़ी भयानक जान बही राय ने कि पामात्रिक प्रवृत्ति ही प्रेम है। परन्तु यह कैसे जाना जा सकता है ? राय ने इसकी व्याख्या भी की। उनमें कहा—श्रिया उसी प्रेम को पशुन्द करती है जिसमें काम-वासना का भीषण आक्रमण निहित हो। परन्तु मैं इस बात की तरह से जाना चाहता हूँ। स्त्री-पुरुष का पारस्परिक सम्बन्ध पहले प्रेम का सम्बन्ध होता है, या काम का सम्बन्ध ? निस्मदेह प्रेम का सम्बन्ध होता है। परन्तु उनमें काम-वासना नहीं दिखाई रहती है, दृढ़ नहीं रहा जा सकता। रेशा को जब मैंने विवाह में पूर्व देखा तो मन में कहीं एक गर्मी उत्पन्न हुई जैसे पथर चढ़ जाया हो ! जिनकी रानों तक मैंने उसकी कल्पना-भूति का ध्यान किया। उस ध्यान में कितना प्रेम का घोर कितना काम, यह मैं नहीं कह सकता, यथथा मुझे कहना चाहिए, काम ही अधिक था।

प्रेम तो देना है। जो कितना अधिक देता है वह उतना ही अधिक प्रेमी है। परन्तु काम तो एक वासना है, वह लेने की प्रवृत्ति प्रकट पाता है। बबूल करता हूँ कि जब-जब मैंने रेशा का ध्यान किया तो मन में यहो हुआ कि उसे मैं प्राप्त कर लू, आत्मवान् कर लू, धरने में समेट लूँ। यह देना कहा हुआ ! लेना ही तो हुआ। इसलिए यह काम ही था, प्रेम नहीं। राय ने ठीक कहा—प्रेम एक पामात्रिक प्रवृत्ति है। क्या रेशा को स्मृति से मेरे मन में पामात्रिक उत्तेजना नहीं पैदा हुई ? पामात्रिक प्रवृत्तियों ने मुझे नहीं झकझोर डाला ?

इसके बाद जब मैंने रेशा को प्राप्त कर लिया, उसका मन भी मन भी मेरा हो गया—तब क्या प्रेम प्रवृत्ति था ? न, न, प्रेम नहीं काम प्रवृत्ति था। प्रेम तो उसका वाहन था। कामदेव साक्षात् प्रेम पर मचागे गीठ-लाना था। और कामदेव जब तक अपना धर्म-शास्त्र रेशा के स्त्री-मन

से न प्राप्त कर जे तब तक उसे बिबध किए रहना था । घोर बन्धन
पद्मभूत था यह प्रेम घोर काम का समुक्त मोर्चा ।

पर तब मैंने इसका महत्त्व समझा ही न था । बहुत चाहिए
मम करने का मुझे होना था न भवकाय । मैं तो सधमुच एक पात्रान्त
था । सब है, सब है, भिन्नाभिनी का यह स्वभाव है । वह भिन्नभिनी का
विरोधी अस्तित्व है । घोर उसका सम्मिश्रण दो पर्वणों के टकरा जाने के
समयान दुर्घट है । उस समय मैंने यह भीषण सत्य नहीं समझा था
भाव समझ रहा हूँ ।

परन्तु वह वास्तविक प्रवृत्ति अब तो क्यों गई ? क्या प्रेम का र
मूल गया ? अरबी जान तो मैं बढ सकता हूँ । मेरे हृदय में प्रेम का समु
उमड़ रहा है—केवल रेखा के लिए । परन्तु उस प्रेम में वह वास्तविक
प्रवृत्ति क्यों नहीं रही है ? रेखा को देखकर, सूकर सब शरीर में पुनर्ह
क्यों नहीं घाती है ? मून गर्म क्यों नहीं होता है ? पाकमण करने का
घावेस क्यों नहीं उत्पन्न हो जाता है ? घोर यदि कभी-नभार हो
भी है, तो रेखा प्रसन्नमण क्यों नहीं करती ? वह भी पिट्टी हो गई है
भला दूधतरका सझाई भी नहीं होती है ! बिल्ली जीवित बूढ़े वर
नो भाग्य मारती है । घेर छाया में मारते हिरण ही पर तो उछाल मरत
है । शिकार की छटपटाइत हो तो शिकार की जान है । नहीं मुझे क
भी शिकार किया जाना है ?

रेखा का शरीर जी रहा है । पर उसका नारी-भाव मर चुका
था तो रहा है, या क्या हो गया है, यह मैं नहीं जान पाता । पहले
बहु चुका हूँ कि वह भीमार नहीं है । जिसने बार मन में रचा उठनी
कि नहीं वह बेवफा तो नहीं है ? भला रेखा जैसी स्त्री भी नहीं बेवफा
हो सकती है ? नहीं, नहीं, नहीं हो सकती । फिर उसे ऐसे अवसर का
मिलने हैं ! अब राय से उसकी पणिष्ठना है । पर राज पर उसकी भ
क्या पार्श्विक हो सकती है ? सबका दुनिया में सब कुछ हो सकता है
है भगवान ! यह मैं क्या सोचने लगा ! जि., जि. ! मगर सब बातों
विचार करने में क्या हर्ज है ! राय तो बहुत दिन से हमारे घर आता
—रेखा के ब्याह के प्रथम से ही । जब मेरा ब्याह नहीं हुआ था,
उसके घर आता था । माया मुझसे झूठकर मिलनी, हंसती, खोजनी थी

न मेरे मन में कुछ बिनाश उत्पन्न हुआ न उसके । हम दोनों घुड़ मित्र-भाव से रहने रहे । उम्मी प्रकार अब राय मेरे यहाँ रेखा से मिलना है, हमना-बोलता है । आत्र के युग में भला घोरत को कहीं बांधकर रखा जा सकता है ? फिर रेखा जैसी पत्नी पर मैं ध्विस्वास करूं, या राय जैसे मित्र पर सदेह करूं, तो क्या यह उचित होगा ?

फिर भी एक बात मैं देखना हूँ । अब रेखा राय से भी तो पहले की भांति नहीं मिलती, हँसती, बोलती । उसके आने पर या तो नुपचाप कोई बुनाई या पुस्तक लेकर बैठ जाती है, या टम जाता है । और राय भी अब उससे बात नहीं करता । क्या उसकी राय से भी सटक गई है ? परन्तु ऐसी कोई बात मुझे तो मामूम नहीं । वह रेखा सा रही है । मैं रेखा ही से पूछना हूँ । मन ही मन बुझने से क्या लाभ ?

“बैठो रेखा, बैठो, कितनी सुन्दर सन्ध्या है ! मैं सोच रहा हूँ, राय सा जाए तो चलकर कोई घन्छी-मी निकर देखो जाए । कुछ मामूम है तुम्हें, आजकल कोई सन्ध्या निकर नहीं लगती है ?”

“मुझे तो नहीं मामूम ।”

“लेकिन राय को जरूर मामूम होगा । वह कोई घन्छी निकर खोजता नहीं है । न हो, बल्कि, उसे उसको घर से लेने पलें ।”

“उनको साथ लेना कोई जरूरी है ?”

“नहीं, वह जान नहीं । माया चली गई, बेचारा दुखी रहता है ।”

“उन्ने दुःख से तुम विशेष दुखी प्रतीत होने हो ।”

“दुःख की बात ही है । कब करो तुम्हीं मुझे खोजकर चली जाओ तो मैं क्या कहूँगा, जानती हो ?”

“क्या करोगे ?”

“भान दे दूँगा । गोमी मार लूँगा ।”

“राय ने तो गोमी नहीं मारी, जान नहीं दी ।”

“वडा मक्कजान है राय । पर मैं तुम्हारे बिना न रह सकूँगा रेखा ।”

“राय भी, मक्कज है, माया से ऐसा ही कहने रहे हों !”

“लेकिन मैं तो तुम्हें बहुत प्यार करता हूँ रेखा ।”

“गय रायद माया को प्यार नहीं करने से !”

“शायद नहीं करते थे।”

“तो बाईस बरस तक क्या करते रहे ? दोनों का संसार कैसे चलता रहा ? बिना प्यार के भी कहीं भीरन-मर्द रह सकते हैं ?”

“नहीं रह सकते रेखा, इन दिनों मैं इस बात को खास तौर पर देख रहा हूँ।”

“इन दिनों क्यों ?”

“पता नहीं, तुम्हें क्या हो गया है। मुमसुम रहती हो। पहले तो तरह-तरह हंगते हुए तुम्हारे होठ फड़कते नहीं। तुम्हारे गानों में गंठे पड़ नहीं। धांसों में थमक घाती नहीं। जब पाग घाती हो तो पास धाते घाते रह जाती हो। तुम्हें देखकर मेरा दिल उछलता है, पर जैसे की उसे दबोच डालता है। क्या तुम इन सब परिवर्तनों को नहीं देखती हो ?”

“नहीं, मैं तो नहीं देखती।”

“तो तुम बहना चाहती हो, तुम बही हो थो पहले थी, जब क्या कर साई थी ?”

“तुम क्या समझते हो, मैं बदल गई हूँ ?”

“जहर बदल गई हो, बरना इतनी बातचीत होने पर भी तुम बह नहीं सकती रहती ? मेरे गले से न झून जाती ? तीन दर्जन चुम्बन तड़ाकत प्रकट न कर देती ?”

“तुम समझते हो, मैं बही ब्याह की ज्वेली बनती रहूँ ?”

“न न, मैं चाहता हूँ तुम भाव की मेरी प्राणप्रिया पत्नी बनो। मैं तुम्हें जो ब्याह के बाद लेना सिखाया है उसे अधिक से अधिक लो जितना प्यार, जितना सुख प्रकटि मे लिए मैं प्रतीक्षा कर रहा हूँ। कहते हैं : लो—लो—लो। लेकिन तुम हो कि घाल उठाकर देखती तक नहीं क्या इतने ही में तुम्हारी मुक्त से वृष्टि हो गई ? कहा गई तुम्हारी का भाकुल-व्याकुल-भातुर मूर्ति, उन्मुख प्यार की धिरकती हुई गुडियाई की फून बखेरती हुई, नजर के तीर बलाती हुई, शरीर की सुपम फैलाती हुई जो तुम घाती थीं—बह तुम अब कहाँ हो ?”

“मैं तो वही हूँ। तुम्हारी समझ का घेर है।”

“ओफ, जितना ठण्डा जवाब है ! मेरी प्यारी रेखा, मेरे प्यारे

दासो मेरी संत से बँडा । मेरे कान से मुँहवाला मुँहवाली हावला
 का... 'मुझे क्या चाहिए ? मैं मुँहवाले लिए क्या करूँ ?... मुझे क्या
 दुःख है ?...'

"मुझे कुछ भी दुःख नहीं है।"

"बैठे हो टपटा टपटा । देखा, मेरा कोई धनवान हो तो बनाओ,
 मैं मुँहवाले हावा मांगूँ।"

"तुम नामसु ही जान का बनकर क्या रहें हो।"

"तो बनाओ क्या जान है ?"

"कुछ जान हो तो कहो।"

"सबसा, मेरी जान छोड़ो, दासकम तुम रात से भी कटी-कटी
 रहती हो।"

"तो क्या करूँ मैं ?"

"तुम्हारे जैसे हूँ तो-बोल्नी भी, बैठे हो हूँ तो-बोल्नी।"

"हूँ तो धानगी तो हूँ तो । कोई जान होनी तो बोल्नी।"

"तुम्हारे तो जान-जान पर हूँ तो धानगी भी, जान-जान से जान निकलती
 भी।"

"तो क्या नहीं निकलती तो क्या करूँ ? उबरेंगी हूँ ?"

"नहीं, उबरेंगी भी उबरन नहीं दे देखा । अब हूँ तो धान तो
 हूँ तो चाहिए।"

न जाने कहाँ से एक धनवान का धंधेग सागर उमड़ साया घोर मैं
 उमड़े हुए गया । देखा ने कहा, "निकर देखने आते थे, आसो देन
 आसो । तबिलत बहल जाएगी।"

"नहीं, धन सीझना । मिर से रई है।"

"तो तो रहो।" इनका कहकर देखा अभी गई, घोर मुझे ऐसा
 लगा कि कोई नम बट गई है घोर सारे घरीर का कून निकल गया है।

लीलावती

मिसेज दत्त सब रोज-रोज ही यही माने सगी हैं। यह मुझे मञ्ज्या नहीं लगता। मेरे साथ वे बहुत प्यार दिखाती हैं। उनकी मोठी बातें, सुन-हरी मुस्कान और सुन्दर शरीर मुझे बहुत आता है। परन्तु न जाने क्यों उससे मुझे आनन्द नहीं आता। उनके आने पर मुझे एक प्रकार की हताशा होती है, फिर भी मन में मँसा-दँसा-सा कुछ लगता है। पापा सब समय से पहले आदिस से आते आते हैं। उनका कहना है कि उनकी तबियत खराब रहने लगी है, दर्द से। पर मैं आनती हूँ, यह सब बहाना है—कोरा बहाना। वे मिसेज दत्त से मिलने के लिए ही आते हैं। पहले मिसेज दत्त मुझे खूब बात करती थी, प्यार जताती थी, पर अब तो वे मेरी तरफ देखकर मुस्कराती हुई सीधी ऊपर पापा के शयनगृह में चली जाती हैं। बहुधा पापा उनसे पहले ही घर आ जाते हैं, पर कभी ऐसा भी होता है कि वे नहीं आ पाते तो भी मिसेज दत्त सीधी ऊपर चली जाती हैं। मेरे पास बैठनी नहीं, बातें भी नहीं करती। न जाने क्यों, उनका इस तरह मुझे देखकर मुस्कराना और चुपचाप ऊपर चला जाना मुझे मञ्ज्या नहीं लगता। अब तो जैसे मेरा मन भी उनसे बात करने को नहीं करता। जब वे मुस्कराकर मेरी ओर देखती हैं तो मुझे साहस होता है कि वे मुझसे प्रश्न कर रही हैं कि क्या पापा ऊपर हैं, और मैं कठपुतली की भाँति सनेह से ही कह देती हूँ कि हैं, थोड़ी आधी। और वे जल्दी-जल्दी कदम उठाकर चली जाती हैं। चाहता हूँ कि मेरा-उनका सामना न हो। वे भी आनन्द यही चाहती हैं। इसीसे मैं जब उनके आने का वक्त होता है तो टल जाती हूँ—या तो छपने पढ़ने के कमरे में दरवाजा भीतर से बंद करके बैठ जाती हूँ, या किसी सहेली के यहाँ चली जाती हूँ। सिर्फ घोफ़र रह जाता है। वह उन्हें मेम साहब

ही रहने देते हैं। ममी भी तो मुझे नहीं छोड़ती। कभी-कभी तो मुझे ऐसा प्रतीत होता है, वही मेरा घर है। वहाँ से जाने को मन ही नहीं करता। वहाँ से लौटकर यहाँ बहुत भूना-भूना लगता है। धीरे धीरे ममी के पास जाने को मन होता है। मन को रोकती हूँ : बहुत रोकती हूँ। तब रोने लगती हूँ और फिर पत्नी जाती हूँ।

सबसे मुश्किल तो ममी हैं। हमारे घर से चली गई हैं तो क्या हुआ ! लेकिन ये मिसेज दत्त मना ममी कैसे बन सकती हैं ! यह प्यार इनमें कहाँ है ! नहीं, नहीं, ये ममी नहीं हैं।

मैंने ममी से मिसेज दत्त के यहाँ जाने-जाने की बात भी कह दी है। वे जाती हैं। सीधी पापा के घमनागर में चली जाती हैं। मुझसे बात तक नहीं करती हैं, यह भी कह दी है। उनकी छाछों में मुझे यही भासता है कि उनके जाने के समय में घर में न रहूँ तो ही अच्छा है, जहाँ भी मैंने कह दी है। ममी सुनकर चुन हो जाती हैं। उनकी नज़र में कैसा कुछ दर्द भर जाता है, देख नहीं सकती मैं। धीरे कभी-कभी पूछ बैठती हूँ—ममी, इन बातों का ध्यानिर मतीजा क्या होगा ? मैंने एक-दो बार ममी से पूछा—क्या मैं उनसे कह दूँ कि वे मेरे घर न धापा करें ? या पापा ही से कह दूँ कि उन्हें न बुलाया करें—तो ममी ने मना कर दिया। एक बार तो यह भी उन्होंने कहा कि मैं वहीं उनके पास आ रहूँ। मेरा मन तो यह चाहता है, पर पापा को छोड़कर कैसे रह सकती हूँ ! फिर वह तो मेरा घर है नहीं।

उस दिन न जाने क्यों ममी अपना गुस्सा न रोक सकीं। हाँ वे, जब मैं उनके पास जाती हूँ, गुस्सा नहीं होनी हैं। पर उस दिन जब मैंने उनसे तमाम दिन पापा के घमनागर में रहने की बात कही, तो...तो वे तिलमिला उठीं। उनके चेहरे पर ऐसा एक कठोर भाव आ गया जैसा मैंने पहले कभी नहीं देखा था। धीरे जब मैं चलने लगी तो उन्होंने कहा, "बेटी, मेरा एक काम कर दोगी बेटी ?"

मैंने कहा, "कहो माँ।"

जब मैं बहुत चुन होती हूँ तो ममी को भा कहती हूँ। मैंने कहा, "कहो माँ।"

उन्होंने मुझे अपने सीने में छिपानिवा कि मैं उनके आसू न देख

मकू घोर कहा, "बेटी, मेरा एक छोटा बहाई बोन के बमरे में टंगा हुआ है, मुझे मा दे।" घोर मीने बड़ छोटी उन्हें मा दिया।

पापा ने मुझसे पूछा, "बड़ा छोटा क्या हुआ?" तो मीने बता दिया कि ममी ने मांगा था, दे पाई हूं।

पापा कुछ बोन नहीं, बुराबाद बने गए। आयद माराज हो गए। पापा भी तो मुझसे कम बान करने हैं। वे चाहते हैं कि जब मिसेज दत्त जाएं तो मैं घर में न रहूं। मैं भी हकीमन में मही चाहती हूं। पहले ममी जब वहां थीं तो उन्होंने कहा था कि मैं होस्टल में जा रहूं, घोर मीने इन्कार कर दिया था; पर अब तो मैं स्वयं चाहती हूं। समझ बान यह है कि मैं न तो मिसेज दत्त का पापा के राजनाम पर इस तरह दत्त जमाना देख सकूंगी हूं, न रोज-रोज उनका खाना बर्दाश्त कर सकूंगी हूं।

मैं मन ही मन खुदनी रहती हूं। हमने बेरो स्टडी में भी हर्ष होना है। ममी से जब-जब मिसेज दत्त की बात मीने बहो, तब-तब वे बुरा रहीं। भयछा-बुरा कुछ नहीं कहा। पर मैं जानती हूं कि यदि मैं मिसेज दत्त को अपमानित करूं तो ममी खुश होगी। बहुत बराब औरत हूं मिसेज दत्त।

सुनीलदत्त

काम-विज्ञान की कुछ पुस्तकें खरीद लाया हूँ। उनका अध्ययन कर रहा हूँ। राय ने जो यह बात कही है कि स्त्रियाँ उसी प्रेम के बशीभूत होती हैं जिसमें कामावेग का भीषण वास्तविक आक्रमण निहित होता है, इसी-से मैं इस विविध विषय का सांगोपांग अध्ययन करूँगा। जब यह विषय जीवन के सुख-दुःख के इतने निकट है, तो यह कालेजों में क्यों नहीं पढ़ाया जाता ! इसपर तो डाक्टरेट करना चाहिए। बड़ा विविध है यह विषय। काम-विज्ञान स्त्रियों की और पुरुषों की अलग-अलग जातियाँ बयान करता है। ये जातियाँ सामाजिक स्तर पर नहीं होतीं—उन और मन की भिन्नता के आधार पर होती हैं। पतली-दुबली, लम्बे शरीर की फुनीली स्त्री, जिसकी जंगलिया और मध्य शरीर भी लम्बा हो, जो लाल फूल और लाल रंग के वस्त्र पसन्द करे, कोपी हो, शरीर पर नीली नल्लें चमकती हों, शरीर के नीचे का भाग लम्बा हो, स्मर-मन्दिर पर गहन रोमावली हो, रतिवत्त सारगन्धि हो, वीघ्र सृष्ट होनेवाली हो, शरीर गर्म रहना हो, न कम न अत्यधिक खाती हो, पित्त प्रकृति की हो, चुपलखोरी की आदत हो, मतिनविष्ट हो, स्वर गधे के समान हो—बहु स्त्री रात्रिनी है। मेरी रेखा रात्रिनी है, न हस्तिनी है। हस्तिनी स्त्री बदन में भारी, थाल में मही, कद में ऊँची होती है। चेहरा व उम-नियाँ उसकी मोटी होती हैं, गर्दन छोटी और मोटी होती है। बाल भूरे होने हैं, स्वभाव की बटु होती है, शरीर से हाथी की मद-गन्ध आती है। होंठ बहुत मोटे, नीचे का होठ लटका हुआ, कोपी, बटुभाविणी, कठिनाई से तृप्त होती है। भला मेरी रेखा ऐसी बड़ा है !

एक स्त्री विवशी होती है—जब उसकी मन की लुभाती है, कद मध्यम होता है। जघनस्वस विज्ञात और शरीर दुबला-पतला होता है।

होठ भरे हुए, काक अंधा, तीन रेखाओं वाला कण्ठ, चक्षोर के समान कठ-स्वर, तलिन कलाधों में रुचि, रोम कम, चंचल हस्ताव, चंचल दृष्टि, बनाव-गृह्णार में रुचि । यह चित्रणी के लक्षण हैं । रेखा चित्रणी भी नहीं है । यह पद्मिनी है । पद्मिनी के लक्षण उनमें मिलते हैं । पद्मिनी स्त्री कमल के समान कोमलांगी, झरोर घोर रत्निल में दिव्यमन्त्र, चरित हरिणी के समान धातों, नेत्रों के किनारे सान, शीघ्र-में गोन डरोर, निल के फून समान नाभिका, धडाकड़ो, सनज्जा, कमल पुष्प के समान सुन्दर नाभिका, चमकचमकी, छाहरे झरोरबामी, चित्रणी बान राख-हमिनी की भांति हो, त्रिके उदर में चित्रणी पड़ती हो, बलहंन के समान त्रिको बाणों मधुर हो, सन-मन में चित्र, माक-गुड रहनेवाली, मानिनी सज्जावनी, धन्यभाषिणी, स्वेन रंग के फुरों को पसंद करने वाली स्त्री पद्मिनी जानि की स्त्री है ।

कहा है, कामदेव के पाँच बाण हैं—सहार, इमार, उधार, एमार, धौमार । कर्मदा इनके लक्षण हैं—दृष्ट, बडा, मदन, मल्लक और मुद्य-स्थान । इन मर्मस्थानों पर मदनक वनुद को तानकर दृष्टिकर बाण-निशेध करने से स्त्री बसीभूत हो जाती है । अनिशून स्त्री को अनुकूल करना, अनुकूल स्त्री को त्रेमी-अनुरागिनी बनाना और अनुरागिनी-अनुरक्ता से रति-धानन्द की प्राप्ति करना—यही कामशास्त्र का पूरा विषय है । ऊँचे तान पर से निरनी हुई निर्धर की तरल जपधार के समान इन प्रवाही सवार में सार पदार्थ कामानन्द है, घोर सगूर्त मध, हास, कप, रम, मन्वादि कामना-मधू उमके सपीन हैं । बडा-मन्द के समान उम बहान धानन्द की कोई मन्दबुद्धि, मृगम काम-कलाओं की शिथिलता को न जानने वाला कोई मूर्ख किस प्रकार प्राप्ति कर सकता है ।

मैन दिव्यों की प्राप्ति की खरी की है । अनेक जानि की स्त्री का वृषक स्वभाव होता है । परन्तु धातु की दृष्टि से बाणा, लपगी, प्रोडा के भिन्न-भिन्न पुन होने हैं, फिर काम-अनुनि के भाव हैं, भीना-कमल धाति इति है । इन सबको न जाननेवाला अनिर्विद्या से मूढ़ पुन के जीवन की प्राप्ति करते भी प्राप्ति नहीं कर पाता है । सब ने प्राप्ति करते भी प्राप्ति नहीं किया है । मैं रतिकला से मु

है ।

हिन्दू-धर्मशास्त्र, दयानन्द, टालस्टाय, गांधी बड़ी कडाई से कहते हैं कि स्त्री-पुरुष का सम्बन्ध सिर्फ सन्तानोत्पत्ति के लिए ही होना चाहिए इसलिए पुरुष को ऋतुकालाभिव्यापी होना चाहिए । ससार के सभी नीतिवान पुरुष यही कहते हैं । पर काम-विज्ञान कहता है कि सहवास का प्रदन केवल नीति या धर्म का हो प्रश्न नहीं है । वह स्वास्थ्य का, विज्ञान का और जीवन के सांस्कृतिक विकास का प्रश्न है । मैंने भी इस सच्चाई पर विचार किया है, और इसी निर्णय पर पहुंचा हूँ कि सहवास का मुख्य उद्देश्य विभिन्नलैंगीय प्रसाधारण प्रानन्द-प्राप्ति है, जिससे न केवल स्वास्थ्य और जीवन को ही उन्नति मिलती है, प्रत्युत भात्मिक प्रकुलना भी प्राप्त होती है । सहवास-सम्बन्धी मामलों में प्रतिबन्ध करने का यदि किसीको अधिकार है तो केवल चिकित्सक को, जो एक-मात्र इसी कारण से स्त्री-पुरुषों के सहवास पर प्रतिबन्ध लगा सकता है या उसे सीमित कर सकता है कि वह जब यह देखे कि उससे स्त्री या पुरुष के स्वास्थ्य पर खतरा है । और यह बात तो सर्वथा यथार्थ है कि सहवास हर हालत में स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है ।

काम-विज्ञान की ये पुस्तकें तो ठीक आधारी पर यह कहती हैं कि बलात् कामवासना को दबाकर रखने में अनेक भयानक प्रसाध्य रोगों की उत्पत्ति होती है । पुरुषों की प्रेक्षा स्त्रियों पर इसका और भी बुरा प्रभाव पड़ता है । फिर मैं अपना ही पापता देख रहा हूँ । मुझे सर्वश्रेष्ठ स्त्री-शरीर प्राप्त है । पर केवल मानसिक उत्तेजना ही की कमी है । हमीने मेरे सारे उत्सास को, जीवन की चिरसाधना को, साहस और विनाश का शरम कर दिया है । कितने दयनीय हैं वे पुरुष-स्त्री ओ पूर्ण स्वयं तो हैं, पर स्त्री या पुरुष के सहवास से वंचित हैं ! धर्मी, मैं तो यहाँ तक कहने का साहस कर सकता हूँ कि ऐसे स्त्री-पुरुष समाज के लिए खतरा हैं ।

मैंने काम-सम्बन्धी स्मृतियों को, आकांक्षाओं को, विकारों को दबा-कर भुसा देने की चेष्टा की । परन्तु इससे मेरी आन्तरिक कामवासना जागरित हो गई । उस दिन पागलपाने के प्रचण विकित्तक कह रहे थे कि पागलपाने के पुरुषों के बाईं में कोई उत्तेजित पुरुष इतना घबरील

की चार जातियाँ होनी हैं। ये जातियाँ स्त्रियों की शारीरिक मानसिक भिन्नता पर आधारित हैं। स्त्रियों की ये शारीरिक मानसिक भिन्नताएँ भी इन्हीं स्त्रियों पर आधारित हैं। बड़ी करामत है इन स्त्रियों की। स्त्री के समान पुरुषों की भी विभिन्न जाति शारीरिक और मानसिक भेदों के आधार पर होती हैं। उनका कारण भी ये ही प्रणियों के साथ होते हैं। यही नहीं, बहुत-से पुरुष स्त्री-स्वभाव के और बहुत स्त्रियाँ पुरुष-स्वभाव की होती हैं, उनका भी कारण इन्हीं प्रणियों के साथ है। इन प्रणियों के उत्पत्ति-मूलत्वर देने से वे स्त्री पुरुष और पुरुष स्त्री बन सफ़ा है। स्त्री-पुरुषों की साहजिक, शक, मूरत, शरीर का ढाँचा सब कुछ इन्हीं प्रणियों पर आधारित है। सब विज्ञान बढ़कर तो बेसी मरकब बन गई है। जिन बातों को लोग स्वाभाविक बानें समझते हैं, उनके मूल में इन प्रणियों के हाथ का प्रभाव है। इसीसे सब बड़े-बड़े चिकित्सक इन स्त्रियों की कृमि रूप में शरीर में पड़नाकर स्त्री-पुरुषों के स्वास्थ्य, शरीर के बाँचे तब स्वाभाव में आसूल परिवर्तन कर सकते हैं। जिन स्त्रियों या पुरुषों शरीर में ये प्रणियाँ बकैष्ट साथ नहीं करती हैं, वे पुरुष अपुस्तक हो जाते हैं और स्त्रियों के स्तन सूख जाते हैं और दाढ़ी-मूँछ निकल जाती हैं। मैंने कुछ स्त्रियाँ दाढ़ी-मूँछवाली देखी हैं। उनके स्वभाव भी पुरुषों जैसे होते हैं। पहले मैं इसे मगवान की साधारणता था, सब जान कि ये इन्हीं प्रणियों के साथ की करामत है। इस वैज्ञानिक अनुसंधान के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि स्वभाव वास्तव में एक रासायनिक परिणाम है और उसका मूल उद्भव अन्तःआय देशी से पैदा होता है। इन स्त्रियों की उत्पत्ति करने वाली अनेक प्रणियाँ हैं। यदि एक प्रण का काम सुख होता है तो दूसरी पर भी उसका प्रभाव पड़ता है। उससे देह-स्वभाव बदल जाता है।

लोग इस कुदरती वैज्ञानिक शरीर-निर्माण की शारीरी को जानते, और थोड़े मोति के उद्देशों द्वारा सब किसी की समझ का देश देकर और उनके स्वभाव और शरीर-निर्माण के प्रतिकूल प्रभाव संघर्ष के लिए विवश करते हैं, जिसका वास्तविक प्रभाव शरीर और मन पर पड़ता है।

नहीं करता जितना श्वियाँ । इसका अभिप्राय तो स्पष्ट है कि उस अपनी वृत्ति को दमन करने के लिए जिनकी शक्ति खर्च करनी पड़ती उनकी शक्ति उनमें नहीं है ।

भौतिकशास्त्री और धर्माचार्य मनोनिग्रहण और संयम पर चाहे जितना भी जोर डालें, और उसकी उपयोगिता की जिनकी भी बात प्रशंसा करें, पर वनान् मनोनिग्रहों के दूवित्र परिणामों में उनको कुछ कारा नहीं मिल सकता । इस समय और धर्माचार्य मनोनिग्रहण को पावन करने की सामर्थ्य बिरसे ही मनस्वी पुरुष में हो सकती है, सर्वप्राणरूप में नहीं । क्या सोचिए तो सार, मेरे जैसे भीषा-भावा दृष्ट-रूप—जो धनही परनी में धनुरक्त है, और जिनके कभी संयम के मन्वन्व में कुछ भी नहीं विचारा है, और स्वामादिक कामोद्रेक में महान का मुक्त प्राप्त कर हृष्टी-शुद्धी जीवन व्यतीत करना चाहता है—क्या वह विन-जीवी और शान नागरिक नहीं है ? क्या मेरे जैसे व्यक्ति को किसी भी धर्म में दुराचारी कहा जा सकता है ?

मजानीजन समझते हैं कि कामवासना एक वैश्व-स्वभाव है, जीवन की स्वामादिक प्रवृत्ति है, परन्तु ऐसी बात नहीं है । शरीर में कुछ प्रवृत्तियाँ हैं, वे घनेक हैं । उनमें विभिन्न प्रकार के साव निरुलने, और रक्त में मिलने रहने हैं, जिनसे शरीर में जीवन की शक्ति का बोज प्रवाहित रहता है, तथा जीवनी शक्ति का संचालन भी होता है । वे सूक्ष्म भावियों के द्वारा रक्त के साथ मिल जाते हैं । इन सारों का समुच्च के स्वास्थ्य पर तो सात प्रभाव पड़ता ही है, स्वभाव पर भी पड़ता है ।

इन प्रवृत्तियों में से दो प्रकार के साव निरुलने हैं । बाहर निरुलने-वाले साव को बाह्य साव कहते हैं । वह स्त्री-पुरुष में स्त्री-भाव और पुरुष-भाव उत्पन्न करता है । घन्तःसाव रक्त में मिलकर कामवासना उत्पन्न करता है । जो घन्तःसाव रक्त के साथ मिलकर कामवासना पैदा करता है, वही शरीर में पुरुषावृत्ति और स्त्री-पावृत्ति के चिह्नों का उदय करता है । उसीके प्रभाव से पुरुषों के दाढ़ी-भूज और स्त्रियों के स्तन और निगन्ध की वृद्धि होती है । इन्हींके आधार पर पुरुष और स्त्री के स्वभाव का निर्माण होता है । मैंने बताया था न, कि स्त्रियों

की चार जातियाँ होती हैं। ये जातियाँ स्त्रियों की शारीरिक और मानसिक भिन्नता पर आधारित हैं। स्त्रियों की ये शारीरिक और मानसिक भिन्नताएँ भी इन्हीं सार्यों पर आधारित हैं। बर्तन बरामद है इन सार्यों की। स्त्री के समान पुरुषों की भी विभिन्न जाति शारीरिक और मानसिक भेदों के आधार पर होती है। उनका कारण भी ये ही घटियों के साथ होते हैं। यही नहीं, बहुत-से पुरुष स्त्री-स्वभाव के और बहुत स्त्रियाँ पुरुष-स्वभाव की होती हैं, उनका भी कारण इन्हीं घटियों के साथ है। इन घटियों के उलट-पुलटकर देने से बेशक स्त्री पुरुष और पुरुष स्त्री बन सकता है। स्त्री-पुरुषों की सादृश, समान मूल्य, शरीर का ढाँचा सब कुछ इन्हीं घटियों पर आधारित है। य सब विज्ञान पढ़कर तो बेटी धक्का चकरा गई है। जिन बातों को सभ्य लोग स्वाभाविक बातें समझते हैं, उनके भूल में इन घटियों के साथ का प्रभाव है। इसीसे यह बड़े-बड़े चिकित्सक इन सार्यों की कृत्रिम रूप से शरीर में पहुँचाकर स्त्री-पुरुषों के स्वास्थ्य, शरीर के ढाँचे तथा स्वभाव में प्राप्ति परिवर्तन कर सकते हैं। जिन स्त्रियों या पुरुषों शरीर में ये घटिया मयेष्ट साथ नहीं करती हैं, वे पुरुष मनुष्य ही नहीं हैं और स्त्रियों के स्तन सूख जाने हैं और बाली-भूँख निराल प्राणी हैं मैंने कुछ स्त्रियाँ बाली-भूँखानी देखी हैं। उनके स्वभाव भी पुरुषों जैसे होते हैं। पहले मैं इसे भवशान की भाषा समझता था, अब जान गया कि ये इन्हीं घटियों के साथ की करामात है। इस वैज्ञानिक अनुसंधान के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि स्वभाव वास्तव में एक रासायनिक परिणाम है और उसका मूल उद्भव अन्तःसाथ पेशी से पैदा होता है। इन सार्यों को उत्पन्न करने वाली धरेक पेशियाँ हैं। यदि एक पेशी का नाम मुझ होना है तो दूसरी पर भी उसका प्रभाव पड़ता है। उससे देह-स्वभाव बदल जाता है।

सोच इस कुदरती वैज्ञानिक शरीर-निर्माण की बारीकी की मैं जानते, और थोड़े मोड के उपदेशों द्वारा सब किसी को तबल का देना देकर और उनके स्वभाव और शरीर-निर्माण के प्रतिकूल सभ्यवाद सपन के लिए विवश करने हैं, जिसका घातक प्रभाव शरीर और मन पर पड़ता है।

मन शरीर से भिन्न नहीं है। वह शरीर ही के गुण-धर्म का परिणाम है। आत्मा को भी प्राण्मात्मिक लोग शरीर से पृथक् सत्ता मानते हैं। वे यह भी कहते हैं कि वही शरीर और मन पर नियन्त्रण करने की शक्ति रखती है। परन्तु यह कौरा सिद्धान्त ही है, व्यवहार में उसकी कोई उपयोगिता नहीं है, न विज्ञान उसके अस्तित्व में साम उठा सकता है, न उसके न होने से विज्ञान का काम घटकरा है।

किसी शारीरिक नाम को सबन इच्छा की ममोम डालना वास्तव में आत्मा का नहीं, मन का काम है। वह इच्छा त्रिवनी दुर्दम्य होगी, मन को दमन करने से उनका ही साथ होगा, क्योंकि मन की गति ही इन्द्रियों की इच्छाओं की पूर्ति की ओर है। मन की शक्ति आनुवंशिक होती है। पूर्व के विचार-संस्कारों से वह प्रभावित रहती है, और पूर्वानुभव का उसपर प्रभुत्व रहता है। ऐसी दशा में किसी भी इन्द्रिय की विषयेच्छा यदि प्रबल होगी तो अन्य इच्छाएं स्मृति में धोमल हो जाती हैं, और सारी जीवनी शक्ति उसी इच्छा पर केन्द्रित रहती है। सब शरीर के इस नैसर्गिक उद्वेग को, जो पराश्रय को पहुँच चुका है, दबाना निरवयव ही शरीर की जीवनी शक्ति के विपरीत एक भयानक चक्का देना है, जिससे वह शक्ति क्षिप्त-मिम्न हो जाती ॥

धोक, चित्तने गहन और भयानक ये तथ्य हैं, जिन्हें सब लोग नहीं जानते, पर जिनका सब लोगों के जीवन पर नैसर्गिक प्रभाव है। लोग कहते हैं, भगवान ही शरीर को, मन को, आत्मा को बनाता है; पर मैं कहना हूँ, ये धर्मियाँ ही भगवान हैं। मानव-जीवन में जो कुछ सक्रिय जीवन दोख रहा है वह इन्हींका परिणाम है। मैं जब रात से इन बातों पर बहुत करना हूँ, तो वह ऐसी कुटिल हामी हँसता है जैसे मैं पागल हूँ, बकवास कर रहा हूँ। वह कभी-कभी बहुत से मान लेता है, पर वह इन बातों को कहा जानता है। मैंने उसे इन पुस्तकों को पढ़ने को सलाह दी तो उसने हसकर कहा, “मेरी तो घोरत हो चली गई है। अब इन पुस्तकों को पढ़कर क्या होगा!”—उसके जवाब से मुझे दुःख होता है, पर ऐसा देना हूँ कि यह जवाब देने हुए उसे दुःख नहीं होता। मामूम होता है, कोई गुन बाज उनके मन से है। वह ऐसे प्रसंगों पर धानों में सरने लगती है। कभी-कभी वह इन बातों की हँसी उगता

है। मुझे मूर्ख समझता है। पर मूर्ख मैं नहीं, वह है। वह विज्ञान की सम्प्रदाय में कुछ नहीं जानता।

रेखा भी इन बातों से बिम्बिताती है। उसे तो ये बातें भातीं ही नहीं। मुनता ही पसन्द नहीं करती। वह उन्हें बंदी बाँते करती है, बुझसा कहकर मेरा उपहास करती है। मो क्या मैं बूढ़ा हो गया ? मैं तो जीवन के प्राप्ति के लिए युद्ध कर रहा हूँ। मेरे जीवन में वहाँ एक टीस है, वहाँ एक पाव है, जिसने मेरे शारे प्रानन्द को बिरकिरा कर दिया है ? मैं तो जमीन निदान चाहता हूँ।

पर किसीके हँसने पर मुँहा करने से क्या ! मैं तब तक पहुँच चुका। रेखा ने जो यह बिरकिरा उत्पन्न हुई है, वह बकर किसी घण्ट के स्त्राज की गड़गड़ी के कारण है। काबूटर लोग यद्यपि यह बात स्वीकार नहीं करने, पर वे मूर्ख भी तो हो सकते हैं। मुझें बिरवान है, मैं एक दिन समस्त बात को वा पाऊँगा। और रेखा को मैं प्राप्त कर लूँगा, नहीं तो मर मिटूँगा।

निष्कर्षतः

[illegible]

कच ही कहूँ ? दण के प्रति मेरे मन में एक प्रेम नहीं है । मैं सब
उमड़ा मित्र हीन गुरु मकना हूँ—उस उसकी लोको का जानूँ । मर-
नार उमे बाभा के गहा हूँ । बाप का बाहूँ मचल्ले, मन व बाहूँ उगी है—
दण बार बाल, दीर देना बाबर बाबा केगी हा जान । दण देना को
मुझने हीन हीन मकना है । वरन् दण की मज्जीरना बरी मकना है ।
कभी-कभी तां बहू मचल्ले मकना है । दण है ।

यह वह मुझार मक करणा है ? इसीने यह इस प्रकार को करने करणा है । उगे नेकन-नाक या वृद्धको रदन का भी कउड लोक बड मग है । इसीने बड देना बड उन्हीकी काने करणा है । यम्मु यह धमकय नही है कि यह मुझार मक भी करणा है ।

रेखा बहुत दूर गई है। वह रेखा से भी उसी प्रकार की जाने करती है। रेखा प्रतीत होता है कि रेखा के मन में अब उसका डेरा बन गयी है। रेखा उसके नाम आते करती है। वह कहती है, 'कभी ऐसा न हो वह सोने हुए उसका बना दबोचकर मार जावे। न जाने कैसे उसके मन में यह भीति उठ गयी हुई है। जब हम सम्मान में मेरी रेखा से उसा मुनकर आते हैं। रेखा ने कहा :

"मैं बहुत दूर गई हूँ। न जाने कब बसा हो जाए। वहीं के गया दबाकर मुझे मार न जावे। पहले की आति न उनमें हास है न शिर्षा, न कोमलता है, न सत्त्वता। उनके नेत्रों में न आने एक हीनी छादनी उनकी देखनी हूँ ! वे वहीं दूर सब पुरखान करती में नजर लगाए हुए गौर से देखने रहते हैं। कुछ बरबराते हैं। फिर हँस पड़ते हैं। कभी करावनी होती है उनकी वह हँसी ! मैं तो उसे नहीं देख सकती, न ही कह सकती। वे अब मेरे निकट आते हैं तो एक प्रकार का धाकधल करने हैं। बस भीषण, बस निर्वेद धाकधल होता है वह ! मैं निषिन्ना उठती हूँ। कभी-कभी रो देती हूँ। कभी-कभी तो वे मुझ पर दण्ड आते हैं। सब उनका धाकधल तो बस, उनका स्वयं भी मैं नहीं मान कर सकती। वर के धरती धार्मिक धाकधल को दृष्ट कर लेते हैं। दृष्ट होकर मुझे एक घोर धर्म देने हैं, जैसे धाक बुझकर दृष्टनी दूर चला हो जाती है। मैं तो अब इन जानों को पार करके ही गुम जाती हूँ। कभी-कभी वे बहुत-बहुत घटनीय धाकधल करते हैं, धाकधल करते हैं। उन समय उनके नेत्रों में एक हिनक चमक मैं देखती हूँ, घोर बर हो जाती हूँ। क्या वे पार्श्व हो गए हैं ? मुझे बचाओ। मुझारे वीरों वदनी हूँ, मुझे बचाओ। इनसे मेरी रक्षा करो। उन्हें मुझसे दूर कर दो। मुझे मेरी साज सुटनी है। अब मैं कहाँ जाऊँ ? तुम मुझे सहारा न दोगे तो मैं वहीं की न रहूँगी, कोनो क्या कहते हो ?"

क्या कहूँ मैं ? मैं तो मुनकर सुन्नाटे में था गया। फिर मैंने कहा, "देखा, सब-सब बना दो, क्या तुम दत्त को प्यार करती हो ?"

"नहीं करती। मैं तुम्हें प्यार करती हूँ। धीरे-धीरे सबों को प्यार नहीं कर सकती, नहीं कर सकती ! तुम जब यदि मेरे प्यार का प्रति-दान न करोगे, मेरी रक्षा न करोगे, तो मैं वहीं की न रहूँगी।"

“लेकिन रेखा, तिसी तो तुम्हें प्राणों से अधिक प्यार करना है। तुम कहो—मैं तुम्हारे लिए क्या करूं?”

“मैं दल में कह दूमी साफ-साफ कि मैं बेवफा हू। तुम्हें प्यार नहीं करती। तुम मुझे त्याग दो। वे मुझे त्याग देंगे, तो मैं तुमसे ब्याह कर लूंगी, जैसे माया ने वर्मा से कर लिया है।”

रेखा के इस प्रस्ताव में मैं झमेले में पड़ गया। मैं समझ ही न पाया कि क्या जवाब दूं। पहले भी एक-दो बार उमने यही बात मोन से कही थी, पर साथ तो उमने साफ-साफ कह दी। मैंने कहा, “रेखा, मुझे मोचने का समय दो। वे बड़ी गम्भीर बातें हैं। कुछ मोच-विचारकर हमें मतला बचम उठाना पड़ेगा।” तो इसपर रेखा को गुस्सा आ गया। गुस्से में पहले कभी मैंने उसे देखा न था। बड़ी सुन्दर लग रही थी वह। गुस्से में उमके गाल लाल हो गए थे। फूले हुए साफ-साफ होठ फटक रहे थे, मजनों में बड़े-बड़े घामुषों के मोनी मज रहे थे। उमने गुस्सा होकर कहा :

“सब क्या मोच-विचार करोगे ? यहाँ तक आकर क्या फिर पीछे हट सजने है ? रेखा ही या तो पहले ही मोच-विचार करते। सब तो मैं हवाहवा की चुकी, सब तो मरना ही होगा। मोच-विचार से क्या होगा सब ?”

मैंने उसे बहुत डाइम दिया, सबझावा-बुझावा। पर वह तो निरमर रोनी रही, रोनी ही रही। फिर उमने न जाने कहाँ से एक रिम्मन मन में मचिन करके कहा, “नहीं, नहीं, साथ ही इगवा कैमला कर दो। बीबी, तुम मुझसे ब्याह करोगे ? मैं दल में सब कुछ मोचकर कर दूँ ?”

जब मैं एकएक उनका प्रस्ताव कैमे मान मजना हू। तिसी बदनामी होनी मेरी। माया के मुचदमे में घोर उसके चने जाने में मैं पहले ही बांधी बदनाम हो चुका हू। सब यदि रेखा के ललाफ घोर ब्याह का प्रसन्न उठा तो एक मजानक विवाद उठ लडा हो सकना है। फिर बीबियों की सदन-बदम तिसनी बाहियान है। इसके सडिगिक मेरे तो घोर तिसी में भी, सडिगियों में भी मजबुत है। क्या रेखा उन्हें बरान

मेरी ? निश्चय ही नहीं कमजरेगी। मैं भी उनके प्री एरानिड

नहीं हो सकता। घायल होने में ही कमजोरी बहुत लगने है। पर मैं तो घायल-
को प्रथम ही घायली मन-विषादि बना चुका हूँ। मैं उसकी नहीं सोच
सकता। घायल के सब मुझे नहीं छोड़ सकती। इन सबके बाद एक और
बात है, बहुत जरूरी है, वह है दस का स्वागत। उसे मैं अभी भोजन
जानता हूँ। उसका मुझा साहब ने मुझे से कम नहीं है। अभी तक वह
रेखा पर बिनाग करता है और उसका मन प्राप्त करने के लिए सब कुछ
कर मुझरे पर सामाया है। रेखा के लिए वह पागल हो रहा है। क्या
प्रतिक्रिया है, ज्यों ही उसे रेखा के देखना होने का ज्ञान हो जाए, वह हम
दोनों को गोली मार दे। इन समय दस की जैसी भीरुता और
विषम मनोवृत्ति हो रही है, उसके लिए कुछ भी समझ नहीं है। इन
मन-बातों पर विचार करके मैंने रेखा से कहा, "रेखा, तुम्हारा क्या
क्याल है कि दस को तुमपर और मुझपर कुछ लज है?"

"नक नहीं है; पर क्या तक यह घाम-मिचौनी होनी रहेगी?"

"इन बातों को छोड़ो रेखा। यह सोचो कि जब उसे प्रथमान् ज्ञान
होगा कि तुम देवका हो और मैं उसका मित्र ही बिनामिच्छा हूँ, तो
वह हम दोनों को गोली से तो नहीं उड़ा देगा?"

रेखा का चेहरा यह बात सुनते ही सफेद हो गया। वह पचताई
साँझों से मेरी घोर बड़ी देर तक देखती रही। फिर उसने कहा,
"उनका जैसा रंग-रुम देखा रही हूँ, उसे देखने घबराहट कुछ नहीं है।"

फिर उसने कुछ सोचकर कहा, "तो क्यों हम-तुम चुनचाप नहीं
भाग चलें?"

"भागकर कहाँ जाएँ?"

"कह, जहाँ मेरे-तुम्हारे अतिरिक्त कोई न हो।"

"पर रेखा, यह तो सोचो यह संभव कैसे हो सकता है! मैं एक
प्रतिष्ठित सरकारी नौकर हूँ। ऐसा करने तो नौकरी तो खत्म ही हुई
समझो। पर तुम्हारे लिए मैं इनका बलिदान सह सकता हूँ। सुनी से।
पर बेटी है। तुम्हारा भी लड़का है। इन्हे कैसे छोड़ा जाएगा। फिर हम
जाएँगे भी नहीं? क्या हम लोग ऐसे नग्न हैं कि कहाँ जाएँ वहीं छिप
जाएँ? रेखा, तुम्हारा यह प्रस्ताव प्रथम से नहीं माना जा सकता है।"

"तो फिर पढ़नी बात ही रहे।"

“तनाक घोर ब्याह बानी ?”

“हो ।”

“उमपर हम विचार कर मनते हैं । परन्तु तुम सभी दत्त की मनोवृत्ति का अध्ययन करो । उसके मन की चाहों । करने प्रति उसके मन में पूर्ण पैदा करो । तभी शायद इस काम में सफलता मिलेगी ।”

“मैं तो उनसे पूर्ण करती हूँ । यह पुरी हूँ । अब उनके मन में कैसे पूर्ण उत्पन्न करें ?”

“मैं मोचूना घोर तुम्हें राह बनाऊंगा । तुम बबराओ मन । सब ठीक हो जाएगा ।”

परन्तु वह मेरे बग पर गिरकर फफक-फफककर रोने लगी । उसने कहा, “हाम, मैं कहीं की न रही ! किम कुछल में मैंने अपना मान दियाया, अपना शील बग किया, अपनी कुल-नाज डुबोई ! मुझे तो सब मर जाना ही चाहिए । फिर मैं जान ही दे दूनी, तुम यदि मुझे सहारा न दोगे । मुझे इस तरह गिराकर तुम दूर छोड़े नहीं रह सकते ! मुझे सहारा देना होगा । मेरे साथ मरना होगा । अब मेरी हरजत तो गई । जब यह बात, मेरी जिन्दगी का यह कासा काम—पानी होकर परपुत्र के सम्पर्क की बात जब मेरी जान-बुझान वाली घोरतें सुनेंगी तो क्या कहेंगी ? कैसे मैं उन्हें मुम दिलाऊंगी । कहो तो सही ।”

इतना कहते-कहते वह मेरी गोद में गिर गई । मुझसे उस बद-नसीब की डाढ़न देने न बना ।

मेरा मन भी उसके लिए दुःखी हुआ । पर अब किया क्या था सकता है ! क्या उससे ब्याह कर लू ? दत्त से सब कुछ साफ-साफ कर दू ?

नहीं, नहीं, यह अभी ठीक नहीं होगा । सोच-समझकर मैं अपना बदम उठाऊंगा ।

आज चौथा दिन है, दस घर पर नहीं है। सरकारी नाम से दौरे पर
 बाहर गए हैं। सभी घोर दस दिन समेंगे उनके सोटने में। इस घर में
 ग्याहकर घाने के बाब यह दूसरा सबसर है जब वे मुझे पर छोड़कर
 बाहर गए हैं। विन्तु तब मे घोर सब में कितना सबसर पड़ गया है !
 तब वे केवल तीन दिन को ही गए थे, घोर साठ दिन प्रथम से घाने की
 चिन्ता व्यक्त करने समे थे। उस चिन्ता मे कितनी ग्याकुलता थी। उसे
 देखकर मेरा मन कैसा हो गया था ! जैसे मैं इन तीन दिनों के वियोग
 मे विन्दा ही नहीं रहूंगी। तब तो नया ही मेरा ग्याह हुआ था; समद
 दो या दार्द साल ही ग्याह को हुए थे। प्रद्युम्न तब शिशु ही था। जब
 वे गए थे—मैं कितना रोई थी ! मुझे दारुन देने में वे भी रोने लगे थे।
 पहली ही बार उस सिंह की-सी प्रकृति के वृक्ष को मैंने रोते देखा था।
 घोर जब वे चले गए तो जैसे मेरा सारा ससार भपेरा हो गया था।
 भीतर-बाहर सर्वत्र एक भभाव ही भभाव मुझे दीखने लगा था। न
 खाना भच्छा लगता था, न नौद आती थी। दिन-दिन-भर मैं प्रद्युम्न
 मे उन्हींकी बाँहें करती थी। बेचारा शिशु कुछ समझता न था, मेरे नेत्रों
 मे आनन्द की भवक देखकर या प्रेम की पीडा देखकर वह हँसता था,
 घोर मैं उसे छाती से लगा लेती थी। कितना सुख मिलता था मुझे उस
 समय शिशु प्रद्युम्न के आतिगन मे ! जैसे वह उन्हीका एक छोटा-सा
 संस्करण ही। जैसे वे ही निकुड़कर मेरे हृदय का हार बन गए हों। मैं
 तब आगते ही सपने देखती थी। उनकी मेघवर्जक-सी हसी घपने कानों
 को गुनती थी। उनके प्यार का घपने प्रत्येक भग पर संकन अनुभव
 करती थी। उस वियोग की पीडा मे भी कितना आनन्द मिलता था
 मुझे ! उन तीन दिन मे उन्होंने चार बार भेजे। चौथे बार मैं घाने की

मे घब पहले की भाँति मुझे देखकर सुग नहीं होती, सामने से टस
ती है। बात भी मेमन से करती है। पर मुझे उसकी क्या परवाह है।

मैं चाहती हूँ, यह चाँख-बिपौनी वा सतरनाक खेल बन्द हो जाए
। र हम सुल्लभ-सुल्ला ब्याह कर में। मुझमें इतना साहस उदय हो
या है कि मैं दस से बड़ दू कि मैं उन्हें प्यार नहीं करती, राय की
रती हूँ। वे मुझे सलाह दे दें। पर राय भिन्न करने हैं, टाँसते हैं। परन्तु
त्व इम बार दस के वापस घर सीटने से पहले ही सब हेत-नेस कर
ली, गद बातें सय कर नूची। अब इस तरह तो नहीं रहा जा सकता न ?

विवाह का उद्देश्य है कि स्त्री-पुरुष दोनों पूर्णरूपेण परस्पर सन्तुष्ट
हों, सुखी हों; दोनों के जीवन विकसित हों। वैवाहिक जीवन जहाँ
पूजल पर स्वर्ण का राज्य है, वहाँ नरककुण्ड भी हो सकता है। सब लोग
वैवाहिक जीवन की बूटियों की परवाह नहीं करते हैं। और उनके
वैवाहिक जीवन घन्ट में घसकल होते हैं। घन्ट में तुमसी की बही कहा-
वत चरितार्थ होती है, 'तुमसी गाय बग़ाय के दिवो काठ में पाय।' स्त्री-
पुरुष का जो भावनसमर्पण एकान्त सुख का उद्गम है, वही निदान नीरस
बन जाता है।

व्याप्तव में विवाह एक विज्ञान है। वैज्ञानिक जीवन में हम विचार-
हीन सटीके पर नहीं चल सकते। स्त्री-पुरुष के बीच जो एक वैज्ञानिक
सीमा है उसे जाने या माने बिना हम प्रेममूलक विवाह में भी सुखी नहीं
रह सकते। निःसन्देह विवाह में प्रेम का बड़ा प्रभाव है और छोटी-मोटी
असुविधाएँ और वास्तविकताएँ तो किसी तरह बर्दाश्त की जा सकती हैं,
परन्तु मैं जानती हूँ वास्तविकताओं की सपेटी में प्रेम भस्म हो जाता है,
और तब वैवाहिक जीवन में जमन ही चलन रह जाती है।

मैं आदर्श की बात नहीं कहती। समाज में हम यह मानकर ही
। चल रहे हैं कि स्त्री-पुरुष का जीवन मिलकर ही पूर्ण है। स्त्री
। के बिना पुरुष का और पुरुष के बिना स्त्री का जीवन अपनी पूरी भर्जादा
। को नहीं प्राप्त कर सकता। परन्तु एक महत्वपूर्ण बात यह है कि पुरुषों
। की अपेक्षा स्त्रियों का विवाहिन जीवन अधिक महत्वपूर्ण है। दूसरे
। क्षेत्रों में स्त्रियों के विवाहिन जीवन में कामतत्व पुरुष की अपेक्षा अधिक
। महत्वपूर्ण है। पुरुष के लिए यह सुविधा है कि वह वैवाहिक जीवन से

उठाकर घाना ध्यान और शक्ति हमारे कामों में लगा ले । पर
 लिए यह सम्भव नहीं है । यदि पुरुष स्त्री को छोड़ दे तो
 स्त्री को घमसा कष्ट होगा, और उसने स्त्री-जीवन का प्रतिक
 समझनीय हो जाएगा; उसका जीवन मरुभूमि हो जाएगा और
 सब सोते मृत जाएंगे । विवाह का उद्देश्य यह है कि स्त्री-पुरुष के
 तक जो दो जीवन अलग-अलग धाराओं में प्रवाहित हो रहे थे, वे
 धाराएं एकीभूत हो जाएं । परन्तु स्त्री-पुरुष के साहचर्य में कामता
 महत्ता है । कभी भी स्त्री शारीरिक और मानसिक स्थितियों में
 छोड़ा जाना सहन नहीं कर सकती ।

विवाह का अर्थ यह नहीं है कि दोनों एक-दूसरे के साथ
 मिलाकर चलने का ध्यान करें । तालमेल रखकर चलने से स्त्री का
 नहीं चल सकता । स्त्री के जीवन का सबसे बड़ा भय है कि वह
 भकेली तो नहीं छोड़ी जा रही है । भारत का समाज स्त्रीहीन है ।
 पुरुषों का समाज पृथक् है और स्त्रियों का पृथक् । इस व्यवस्था ने
 की स्थिति को पुरुषों की प्रशंसा होना बना दिया है । समाज ने
 होना को वास्तविकता बना दिया है । और वह उसीको मानकर च
 है ।

हां, एक बात है । प्रतिभाशाली व्यक्ति की पत्नी होना दुर्घन्य जो
 का काम है । प्रतिभाशाली लोग हड़बिस्त होते हैं । वे अपने काम में
 रहते हैं, और पत्नी के प्रति अत्यंत आनंद प्राप्त करने हैं । वे जीवन
 छोटी-छोटी किन्तु अनिवार्य बातों में पत्नी का सम-सहयोग नहीं
 सकते, और स्त्रियां उन्हें हृदयहीन समझने लगती हैं । ऐसी ही
 उनके सम्बन्ध में कही जा सकती है जो उन्मादी हो रहे हैं ।

जीवन में वितनी ही अधिक दिलचस्पियां होती हैं, जीवन का उत्
 ही विस्तार हो जाना है । सुख-दुःख भी उतना ही बड़ा हो जाना ।
 परन्तु स्त्रियां जो घरों में निष्क्रिय बैठी रहती हैं, वे उनमें भाग नहीं
 सकती । उनके लिए प्रेम और काम ही एक महत्त्वपूर्ण बस्तु रह जा
 है । परन्तु यह सामान्य टीका नहीं है । स्त्री को कर्म से अपना विमान
 पति से सहयोग करना दिनकर हो सकता है, और यह सहयोग बेश
 अभिन्न होना चाहिए जैसा काम-साहचर्य में होता है ।

मैं स्वीकार करती हूँ कि विवाह का कार्य विज्ञानियों का प्रारम्भ है। मां-बाप के यहाँ निर्दुष्ट जीवन व्यतीत करने वाली मनुषी पर एकाग्रता ही विज्ञानियों का भूतान उभर आता है, परन्तु वह भी तो मर है कि जीवन के सम्बन्ध में पति-पत्नी को एक सहयोगी साथी होने के लिये एक स्वयं और प्राकृतिक दर्शन है। दर्शन ॥ मेरा मतलब बलुना की विषय उदाहरण नहीं है। दर्शन से मेरा अभिप्राय वह समीक्षा-दृष्टि है, जिससे हम जीवन को देखते हैं। वेदक जब हम जीवन पर व्यापक दार्शनिक दृष्टि डालते हैं तब प्रेम और कामतत्त्व ही नहीं, संपूर्ण जीवन ही विज्ञानियों की प्रवेशा नगण्य रह जाता है, परन्तु हमें नहीं। जीवन तो बाहर-भीतर मन में भरा हुआ है ही। संसार में भ्रमण करते हैं, उत्थापन होते हैं, महापारी पैसगी है, जनपदी बर्तन होता है। हिम जलु है, हिम मनुष्य है, ये सब तो निष्प ही हमारे जीवन के चारों ओर हैं और उनके सहारक प्राप्त्य हमें सावधान होने की ओरें केनावनी भी नहीं देते। फिर भी हम हमने-ओमते हैं, लाते-दीते हैं, मोन-मना करने हैं, सत्रों के कर से हम सर्व सामान्य कोड़े ही बने रहते हैं। इसी भाँति विज्ञानियों वैवाहिक जीवन की भारी-भारी है—पर उन्हें बर्दाश्त करने का साहस और बल तो हम प्रेम और कामतत्त्व ही से पाते हैं। कामतत्त्व और प्रेम ही तो हमें—स्त्री और पुरुष को—भिन्न-भिन्नता के माध्यम से एक इकाई में बाँधता है। यही तो स्त्री-पुरुष के प्राणी का मटकमन करता है।

यदि स्त्री-पुरुष के जीवन-दर्शन के दृष्टिकोण भिन्न हों—एक उन्हें गम्भीर उर्ध्वपूर्ण और दूसरा जैसे बने भीर-मना करने का माध्यम समझता हो—तो दोनों की मिलकर एक इकाई न बन पाएगी, न काम-विराम और न प्रेम-विकास एक सम्मान पर केन्द्रित होगा।

इसीसे सावद प्राचीन ज्योतिर्विद् विवाहान्न में पति-पत्नी की लज्ज-गुण्डली मिलाने हैं, उनमें वर्ण, मण, नख और राशि को प्रधान देखते हैं। मैं तो इस ज्योतिर्विज्ञान को मान्य नहीं। पर यह मैं देखती हूँ कि यह विज्ञान नर-नारी-साहचर्य पर एक समीक्षा-दृष्टि ही नहीं, समाधान-दृष्टि भी रखता है। मैं यह भी समझती हूँ कि निकट भविष्य में नर-नारी की जोड़ी मिलाने का काम ज्योतिर्विद् नहीं, चिकित्सा

आयकल सम्भोरता ॥ विचार कर रही हूँ। पहले बाप के प्रति मेरे कम में निरस्तार का उदय हुआ था : जैसे उसने अपने हाईड वर्स के बैरा-
टिक सम्पत्ति को भग कर दिया। पर अब मैं देखती हूँ उन पश्चिम्पिण्डों
और डिमेशारियों को जो बैराटिक जीवन को इन दोर पर मे समी
है। मैं भी अब उन मोड़ पर पहुँच गई हूँ। और डिमेशारियों तथा
पश्चिम्पिण्डों का—जो मेरे ऊपर से गुजर रही है, सम्पन्न कर रही है।
मैं अब चाहती हूँ, इस से जल्द से जल्द मेरा रिहाइ रिन्डेर हो जाए,
और जल्द से जल्द मेरा राय से निबाह हो जाए।

अब इस छोटी-छोटी के जीवन में क्या मुश्किल है ? और इतनी बड़ी
छोटी ? गरिब हो कर चोरीचोरा ? और पुराने को बदलना ? यश है।
किसी दूसरी स्त्री के ऐसे सावण्ड को मैं बदलना बदलाना नहीं कर सकती
थी। पर अब तो मैं स्वयं ही यह बहिर सावण्ड कर रही हूँ; और अपनी
ही मजदूरी से बिरनी जानी हूँ। जैसे बदलना एक मैं इन जीवन को !
नहीं, नहीं। यह नहीं हो सकता। अब तो इस के जाने में प्रयत्न ही तब
कुछ निर्णय हो जाना चाहिए।

राय टांगने हूँ। क्यों टांगने हूँ अपना ? क्या के मुझने प्रेम नहीं
काने ? क्या उनके के सब मोड़े बाड़े मुड़े हूँ ? उनका यह बैरम्प छन है ?
यदि ऐसा हुआ तो मैं तो नष्ट हो गई, कहीं भी न रही !

यह ठीक है, अभी कुछ विगडा नहीं है। अभी मैं इस की पत्नी
हूँ। यह सब है कि इस फिर मे मेरा मन जाने के लिए पहले मे पवित्र
बेचैन है। केवन मैं अपना मन कर लूँ, उन्हींमें अनुकूल हो जाऊँ, बीने
मैं थी। वे तो अभी कुछ भी नहीं जानते। मेरे चरित्र पर संदेह भी नहीं
करत। फिर से मुझे पाकर लुग होवे, अपना कर्म सफल सम्झने, और
मेरा यह सम्भार—यह वस्तु—अभी भी प्रगट न होया, दिना ही
रहेगा।

परन्तु नहीं, अब यह नहीं हो सकता। क्यों नहीं हो सकता, यह मैं
जापको जैसे समझाऊँ। मैंने कहा न था कि मन की दुनिया उन की
दुनिया से सूझ तो है पर सावण्ड पक्षिमान है। उसीने मेरे जीवन को
चागों और से दबोच लिया है। मैं जिस मार्ग पर चल लड़ी हुई हूँ उसपर
से अब लौट नहीं सकती। मैं उस जाति की स्त्री नहीं हूँ कि यहाँ प्रेम

हो बड़ा गालगल बरछ, लज-लजल बरछ । वन की प्रताप दह में
 कल मचनी है कि बर गाव को मैं धावत लगी हूँ धावत का बुरी
 डीक है कि बर गाव वन के धावत है, धावत है । के नहीं बरछ
 मैं तो जानती हूँ । इस धावत को धावत वन लजल में धावत है
 वन के धावत नहीं जा मचनी ।

काव, मैं वन की बरछावत नहीं हो लगी । बर बरछी धाव
 दिवावतों को लगी तो हो डीक का, धावत का ! धावत धावत
 के धावत कावत की धावत में धावत धावत । गाव को धावत धावत
 धावत में धावत नहीं । मैं बरछावत हो नहीं ।





कि पुरुष स्त्री से अपने स्वार्थ का ही सम्बन्ध रखता है ; और स्त्रियाँ इन बात को नहीं समझती । समझ भी कैसे सकती हैं ? विवाह के बाद जो छोटी-मोटी सुख-सुविधा और स्वास्तिव जसे मिल जाता है, वह तो जमीनें सो जानी है । पति के द्वारा वे आदर-नस्तर, साह-ग्यार को देखकर, वह यह बलाना भी नहीं कर सकती कि वह मेरी संलग्नकामना नहीं करता । न वह अपने पिता के ही सम्बन्ध में ऐसी बात सोच सकती है ; परन्तु जब स्त्री-जानि के समूचे सुख-दुःख और उसके विषय जीवन पर विचार किया जाता है तो पता लगता है कि पति और पिता दोनों ही ने केवल अपना ही मतलब, अपनी ही सुविधाएँ देखी हैं, स्त्री को नहीं । स्त्री को यह अवश्य सोचना चाहिए कि समार-भर में जीवन के नियमों का निर्माण पुरुषों ने किया है । पुरुषों के स्वार्थों और उनकी सुख-सुविधाओं को उन्होंने प्राथमिकता दी है, और उन नियमों का निर्माण करने समय वे न पिता से, न भाई, न पति; वे केवल पुरुष से और स्त्रियों उनकी धार्मिकता न थी, केवल स्त्री थी । पिता ने पिता बनकर पुत्रों के सुख-दुःख का विचार नहीं किया, न पति ने पति बनकर पत्नी पर समता की । वे पुरुष थे, इसलिए केवल पुरुष के स्वार्थ को सामने रखकर उन्होंने समाज और धर्म-सम्बन्धी कानून बनाए, और उन सब नियमों-कानूनों का अधिग्रहण रखा, स्त्रियों से पुरुष अपना प्राप्तकथ अधिक से अधिक चिन्ता और कैसे बसूल करे । मनु माए, पराशर माए, बृह माए, सूमा माए, ईसा माए, संकर माए और इलो क पर इलो क रखकर, मिद्धात पर मिद्धात रखकर शास्त्र-वचन की उपर मुहर लगा दी । इन प्रकार पुरुषों के स्वार्थ ने धर्म बनकर समाज पर शासन करना आरम्भ कर दिया । धर्म के सामने भला व्यक्ति का सुख-दुःख, स्नेह, भलाई-बुराई किन काम का सकती है ? इन्हींका तो परिणाम यह हुआ कि मुर्दा पति के माद दिन्दा स्त्री को पिता पर जला डालना भी स्त्री धर्म की चरम सीमा मान ली गई ।

प्राचीन युग में लोग अपने पुत्रों-पुत्रियों को भी देवताओं के सामने बलिदान दे दिया करते थे । यहूदी संत इब्राहिम ने भी पुत्र के बलिदान का संकल्प किया था । भाव हमें यह बात सुनने में घटपटी लग रही है कि कैसे बिना अपने पुत्र और कन्या की हत्या करके पुण्यार्जन करने की

या, "घाप ठीक रहने हैं। परन्तु जिस देश में स्त्रियों के मिर काटे जाने हैं, उस देश में यह स्वाभाविक है कि स्त्रियाँ यह जानना चाहें कि उनके मिर क्यों काटे जा रहे हैं।"

किमी भी देश में जाइए। कहीं भी स्त्री को उसका प्राप्त अधिकार नहीं चुकाया जाता। सर्वत्र ही उनके साथ अन्याय-सत्याचार होता है। वह पुरुष का एक उपाग बनकर जीती है। केवल यही नहीं कि पुरुष स्त्री पर नशा पतवार कर रहा था; सदा ही उसे ग्यायोनिन प्राप्त अधिकार से लुप्त कर रहा है। मेरा यह ध्येय सभी देशों और सभी जातियों पर है।

समस्त मान्य यह है कि बलात् सहयोग एक निरुद्ध काम है। यदि स्त्री पर यह सहयोग लाया जाएगा तो उसकी स्थिति अत्यन्त गिर जाएगी। मैं कहने ही कह चुकी हूँ कि धर्म की कटुता और धर्म के अन्याय ने मिलकर स्त्रियों को नीचे गिरा दिया है। धार्मिक आदेशों में विरक्ति होती है। मन में यह भाव उत्पन्न करना पड़ता है कि सामाजिक वस्तुओं में हमारी कोई धार्मिक नहीं है। सामाजिक वस्तुओं में स्त्री भी है। धर्मनः स्त्री पुरुष की जीवन-संश्लिष्ट न होकर उसकी एक सहायिका, सहाय की वस्तु बन गई है। फिर क्यों न पुरुष उसका सममाना उपयोग करेगा ?

साधारणतः की एक धारणा मान्य यह है कि मनुष्य प्राणी स्वाधीनता को कहाँ तक सीमा में जाना ॥ यहाँ तक किमीनी समस्त स्वाधीनता में यह टकरा न जाए। यह एक प्रकार से मनुष्य ॥ जायों पर नियंत्रण है। और समाज के सभी अंग इसी नियंत्रण में समा जाते हैं। इसे जिस समाज ने विनया सहाय माना है उनका ही उसने स्त्री के अधिकारों तथा स्वतन्त्रता का अतिक्रमण किया है।

परन्तु समस्त मनुष्य की स्वतन्त्रता और गुण बुद्धि स्त्री को जो अधिकार देनी है, वही मानव-समाज की छोटी नीति है। उसीने मनुष्य का अतिक्रमण होता है। स्त्री सहाय है, पुरुष सहाय है। पर वह उधार और अनेकमयी अधिक है। सब सब तक पुरुष यह समझता है कि स्त्री पुरुष की सहायिका है उसकी भोग-वस्तु है, सब तक समाज की नारी में उनका कोई अतिक्रमण नहीं हो सकता। सामान्य देशों में ऐसा है कि जब तक

ये स्त्री और पुरुष तन-मन से स्वाभाविक बंधन में नहीं बंध जा सकते। जब स्वाभाविक बंधन ही न रहेगा, जब कानूनी या सामाजिक या धार्मिक चाहे जो भी नाम उस दीर्घतम बंधन सफल नहीं हो सकता, न उसे समाज के लिए श्रेयस्कर समझा जा सकता है।

आज हमारे देश में भी तब तक स्वीकार कर लिया है। मैं कभी नहीं उसके पक्ष में नहीं थी, पर स्वयं इस स्थिति में था। बहुत ही कम मात्रा में लिए अनिवार्य हो गया है। इस समय समाज के मूल्यों में एक गहरा है। इसने यह सम्भावना विकसित हुई है कि जिस समय एक पत्नी-विवाह की प्रथा का विकास हो रहा था, उस समय कानून के द्वारा पुरुष और स्त्री को मिलाकर एक करना विवाह का एक अंग मान लिया गया, जो वास्तव में एक प्रकार का मोटा सा। जब प्रेम के द्वारा दोनों का मिलाकर एक होना महत्ता नहीं रहता। कानून के द्वारा मिलाकर एक होना ही अधिक महत्वपूर्ण है। परन्तु यह व्यवस्था देर तक चल सकती। और कानून के द्वारा स्त्री-पुरुष के मिलने की प्रक्रिया प्रेम के द्वारा मिलना ही अधिक उपयुक्त प्रमाणित होया; और स्त्री पुरुष के संयोग में एक-दूसरे की भावनाओं के विकास के लिए सामाजिक समावेश होगा। और तब समाज यह भी समझ जाएगा कि आज के सम्य समाज में विवाह की जो परिभाषा, अब तक नहीं धारी रही है वह समझ-बूझ सामन्ती युग की परिभाषा का जो एक लक्षण था या जो धार्मिक एवं मानसिक दोनों ही कारणों पर तब तक समझ रहा।

दिलीपकुमार राय

सब को देना सबके बहानों की जाति मेरे सामने सब गई। ठण्ठी छारी
 माधुर्यता, शोषणता, प्रेम जबकर बर्तों का स्नेहियर बन गया है—दुम्ह-
 दुगंम और समझ, मरुत। वह जिद टान बैठी है कि मैं उसे विवाह की
 स्वीकृति दे दू, और दन के घाने पर वह सब कुछ समझें वह दे, और
 लगाव देने पर दन को मजबूर करे। फिर हम ब्याह करके पति-पत्नी
 का साम्य जीवन व्यतीत करें। वेधारी गरीब नहीं समझती कि सब
 हमारे और मेरे सिर्फ पति-पत्नी का साम्य जीवन व्यतीत करना कितना
 कठिन है, मगमग समझते हैं। सब वह एक पवित्र, पशुनी, विवाहवत्
 के योग्य प्रयोग बन्ना नहीं है, पगनी है; एक अनिष्टित और एकनिष्ट
 पति की विवाहिता पत्नी है जिसका समझ में एक स्थान है। हमारे
 अनिष्टित वह एक पुत्र की मा है। और दूसरे में पत्नी उम्र का एक
 समझ स्थिति है। मधुपुत्र में समझ तो हो हो। किन्तु ही कुनबपुत्रों
 और कुमारिकाओं का मैंने शील भंग किया है, पवित्रता नष्ट की है;
 विलास किया है; झूठे झाने दिए हैं। चारमभोज को मैंने प्रदानता की
 है। स्त्री को भोग-मायसी समझा है। विवाहिता पत्नी तो मेरी की माया
 —वही योग्य और निष्ठावान पत्नी थी। उसे मैंने खो जाने दिया।
 पुरवान नहीं; घानो सब इज्जत-साबर के साथ। सब तो घशमत्र ने
 भी मेरे चरित्र पर दुश्चरित्रता की मुहर लगा दी। सब सम्मान्य पति-
 वार के भोग घनरग रूप में घाने पर मेरे स्वागत करते बठराते
 हैं। सम्मान्य महिलाएं मुझसे मिलने से बचना चाहती हैं। कुछ प्रोफ़े
 मुझे कोबूझ से देखती हैं। माया के सम्बन्ध में ध्वंस-बाण कमती है—
 मुझे कष्ट पहुंचाने के लिए, मेरा उपहास करने के लिए, मेरी ही दृष्टि
 के गिराने के लिए। मगर मैं उनका कुछ नहीं कर सकता, तिन-

मिनावर रह जाता हूँ ।

मेरी उम्र बल चुकी है । सब तो मैं पचास के पेटे में बहक चुका हूँ ।
घोर मेरी बदनामी यहाँ तक फैली हुई है कि मैं बेबी के लिए अच्छा
सहना नहीं पा रहा हूँ । कोई प्रतिष्ठित परिवार का सम्मान्त पुरुष अपने
सड़के में बेरी लड़की का रिश्ता करना नहीं चाहता, मेरी लड़की को
घपनी बहू बनाना नहीं चाहता । मेरी बेबी निर्दोष है, सुन्दर है, बुद्धि-
मान है, उच्चशिक्षा प्राप्त है । वह सब भाँति योग्य घर की पत्नी है,
परन्तु मेरे बसवित्त जीवन की छाया उसपर है । मैं कसुप उसपर छा
गया है । जैसे वह एक भगविन बस्तु हो गई है, घोर समाज उसे छूना
भी नहीं चाहता । पहेल में मैं एक अच्छी रखम देने को राजी हूँ, पर तो
भी लोग मेरी जान, मेरा प्रत्याय मस्वीकार कर देते हैं । बेबी का जान
होना भी रिश्ता कष्टकर है ! -- वह मैंने अभी नहीं सोचा था :

“जाते हि कस्या महतीह चिन्ता, कस्मै प्रदेयेति महान् वितर्कः ।

दत्ता गुणं वास्यति वा न वेति कस्या पितृत्वं सन्तु नाम कष्टम् ॥”

बेबी भी अब यह बात जान गई है । उसकी विवाह की धातु बीतती
जा रही है, परन्तु योग्य घर उसे मस्वीकार करते जा रहे हैं । इन बातों
को गुन-गुनकर मेरे प्रति एक विनृष्णा के भाव उसके मन में भरते जा
रहे हैं । अब वह पहले की भाँति मेरा लयाभ भी नहीं रखती । रेलों से
अब बड़ पूछा करती है । उसका इस प्रकार घर में घाना घोर मेरे गाँव
रहना उसे बर्दाश्त नहीं है । वह कई बार अपना विरोध प्रकट कर चुकी
है । उमने होस्टल में जाकर रहने को बिलना हठ किया था । पहले माय
में बाधा था, अब तो वह इन्कार कर गई थी; पर अब बहुत हठ किया
गैर, अब तो वह जान ही लगे हुई—उसकी रिश्ता समाप्त हो गई ।
घर में देखना हूँ, इस घर में रहना अब उसे दूसरा हो रहा है । लेकिन
उसे कहीं निकलने के लू ? क्या सबक घर के लू ? मैं तो अपना को भँ
अब उसे मे कामने घर घामादा हूँ —पर कोई मिले भी तो ! कोई हाथ
भी लोँ फैलाएँ !

इस हासन में अब बेबी ने क्याह की यह बहुत बड़ी जिम्मेदारी में
गिर पर सका है, तो मैं रेलों से क्याह करने की जान पर
गरना हूँ ! मेरे सामने काटी हो बडिनाइया है, निक बेबी हो.

सुनीलदत्त

रेखा घर में नहीं है तो कहाँ है ? कहाँ है ? चाय बप दिन बाद !
भीता है । बगना घर गढ़ा था कि कड़ बरतने में धाँधे बिगड़ स
हीली । धपनी धवाई का तार में खेद बुझा था । दर वहाँ मल्लाह है

"बसुन्धरी तो कहाँ है ? धाया, धाया, क्या मुख की रङ्गी हो ?"

धाया हड़कड़ाकर नहीं हो गई । उसने धाँधे बपते-बपते क
"ही नहीं ।"

"भेकित रेखा कहाँ है ?"

"जी, जी..."

"बहो, बहो ।"—क्या कोई दुर्घटना हो गई है ? रेखा घर न
है ? रेखा नहीं है ? टिडनी धायाकाओं से बेरा मन भर गया है । व
धाया भीभी मगर बिग नहीं है, जराब नहीं देती ।

"जराब दो धाया ? क्या उसकी तबियत खराब है ?"

"जी नहीं ।"

"बढ़ डीक-डाक तो है ?"

"जी ।"

"लेबिस कहाँ है ?"

"जी, जी..."

"जी, जी, क्या बगलो हो ? कहती क्यों नहीं ? कहाँ है रेखा ?"

"राय के घर गई हैं, अभी सौटो ।"

"क्या ? राय के घर ?"

। फिर गुम गया है

... है ।

! वह वहाँ इस

निर

"जी, वह नहीं सनती।"
 "क्यों नहीं वह सनती?"
 "जी, मैं नहीं जानती।"
 "मेरा तार धाया था?"
 "जी।"
 "रेखा ने पड़ा था?"
 "जी नहीं।"
 "क्यों?"
 "वे यहाँ नहीं थी।"
 "तब कहाँ थी?"
 "राय के घर।"
 "राय के घर? कब गई थी वहाँ?"
 "दोपहर खाना खाकर।"
 "दोर अभी तक नहीं लौटी? दग बग रहे हैं।"
 "जी।"
 "तार कहाँ है?"
 "यह है।"
 "तार तो निखीने पड़ा ही नहीं है। बीना का सैरा बन्द है।"
 "तुमने तार वहाँ भेजा नहीं?"
 "जी नहीं।"
 "क्यों नहीं?"
 "दुपम नहीं है।"
 "बीना दुपम नहीं है?"
 "यह कि वहाँ राय के घर पर कोई बीयर-बाकुर न आए।"
 "क्या भात्र से पहले भी गई थी?"
 "रोक जाती हूँ।"
 "किस बक्त?"
 "दोपहर में खाना खाने के बाद।"
 "दोर घाती कब है?"
 "कभी दग बगे, कभी बाकुर बगे रात को।"

सेरिन तुम हूँ क्यों रहो हो गेया ? भगवान की कण्ठ म—म—
—म न—न—नगे में नहीं हूँ । घाघो, घाघो, एक किंग हाकिम,
एक किंग । घाघो, वही घाघो । सेरिन तुम्हारी घागों में दह कर चमक
रहा है—साव, साव ? क्या तुमने भी बी है ? तब तो बहार ही बहार
है ।

गिघो दल, गिघो । घानमारी में घोर दूधरी बोलन है ।

बाह दोस्त, घुब बाद दिनाई ! साघो फिर । सेरिन घानी सव ।
भीर ही सही । बोलन मुंह में लपटा हूँ । घोह घान-घान-घान, जप-
जला-जला-जला, घा-घा-न । घा-घा-न !

गिघो दल, गिघो । घनी बोलन में बाकी है ।

साघो फिर, रेला, भीरवान घा आघो । घरे, तुम तो लम्बी होती
जा रही हो—दबंत के समान—क—क—कैसे तु—तुम्हें बंक में
समेदूना ?

घरी घो री बहान—पापाख—पापाखी—घा—घा—घव—घ
—घ मैं आता हूँ ।

घोनों हाथ पसारकर चल रहा हूँ, घोर टकरा जाना हूँ घालमारी
से—तिर चकरा गया । तीव्र वेदना—बड़ी ती—व-बून-बून-बून !

सुनीलदत्त

ठोक है, दिन निकल गया। घूब खिड़कियों के पर्दों से छनकर आ रही है। लेकिन सिर में बड़ा दर्द है, ठोक है, पाद धाया, रात बहुत पी गया और घासमारो से टकरा गया। लेकिन रेखा कहाँ है? मोह, वह तो रात भर में थी ही नहीं! बाह, मैं रात-भर पर्शों पर ही सायब पड़ा रहा। अब उठना चाहिए। वह सामने शृंगार-टेबल है, उसके लीशे में देखूँ। ओक, बड़ी विकरास मूरत बन गई। सायब सिर फट गया। कोई बात नहीं। अभी साफ किए जायता हूँ। लीन द्वार खटखटा रहा है? ठहरो जरा, मैं बायकम में हूँ, जरा ठहरो! यहाँ बायकम है। पहुँचे लून घो जायना चाहिए। बड़ा भारी जकम हो गया है। लेकिन भर जाएगा। बने-बने जकम भर जाते हैं। पर दिल में जो पाव रेखा कर गई, वह नहीं भरेगा। तो चली ही गई वह, राय के यहाँ! इनना तो मैंने कभी नहीं-तोचा था। रेखा ऐसी थी भी नहीं! फिर राय की मुकसे क्या सनता! वह बूझ बढपूरत भावमी है। लेकिन वह हो कैसे गया? मोचा तो करता था रेखा के रग-डग देखकर कि कहीं वह बेवफा तो नहीं है, पर जब-जब ये बातें मन में उठती थीं, मैं अपने ही को धिक्कारता था। मैं तो समझता था कि कहीं मेरे ही में भ्रुति है। इसीसे रेखा मेरी होकर भी मुकसे दूर हो गई है। पर रेखा पर-मुदणगामिनी बन जाएगी, यह तो मैं स्वप्न में भी नहीं सोच सकता था।

राय पर मैंने विश्वास किया। छिः, छिः, दुनिया में अब किसी भले भादमी पर विश्वास नहीं करना चाहिए। राय मेरा पुराना दोस्त है जिसने महसान हूँ मेरे उसपर। पर खैर, जो होना था वह तो हो ही गया। अब तो रेखा को विसर्जन करना होचा, जैसे देवी की सत्री-वर्ज मूर्ति को गंगा में विसर्जन करना होना है। पर मैं रेखा के बिना जीऊँगा

बड़े ? नहीं, नहीं की सकता हूँ। किसी तरह नहीं। मैं मुर्ख भयङ्कर वा
 कि मेरा मेरे बिना नहीं की सकता। सो वह तो बड़ा बड़ा काम है।
 मेरा नहीं है। मेरा नहीं है। मेरा नहीं है। मेरा नहीं है। मेरा नहीं है।
 वह बड़े का मतलब है। मैं उनका परिचय करा देता हूँ। वह
 मैं नहीं हो हूँ। मैं क्या हूँ तो वह परिचय नहीं करता। मैं क्या
 करता हूँ तो वह परिचय नहीं करता। मैं क्या करता हूँ, वेना
 हूँ।

दूसरी मैं जाने दोनों को देखूँ। मैं जानूँ नहीं हूँ, नीला गला हूँ।
 मेरी हैमिंग्टन व बहुत सारे नीले हैं। वेना इन्फिन्ट नहीं कि हमारे
 इन्फिन्ट वह काम का जो भारी भार है, उसे बहुत करने की मायदा
 हुबसे की रहे, घोर इतना रात तापमान में मुकाबल करें, घिनु इन्फिन्ट
 भी कि वह एक सीमा परता का ज़ीक भी है। जानता हूँ कि मैं
 कभी-कभी बहुत ही जाना हूँ; पर इसके मैं किसीतर कोई समाचार
 को नहीं किता, किसी का कुछ बिनाहा तो नहीं ? इन्फिन्ट ही जान में
 वाली यह मेरे बेहदा हो जानगी ? दूसरे पुनः की घटनाविनी बन
 जानगी ? तब तो मेरे चर्चों की चिन्तों की कोई बर्बाद ही नहीं रह
 सकती। हो सकता है, जराब पीना घनैतिक काम हो, पर किसी
 बिनाहिना गन्धी घोर माना कागर-पुनः की घटनाविनी होना क्या है ?
 उमे मैं कोरा घनैतिक काम नहीं कह सकता। वह एक भयानक परताप
 है घोर जगहा दण्ड मुण्ड है। तब क्या मैं रेखा को भार जानूँ ? रेखा
 को ? जिसे मैं जानों में भी बहुत ध्यानदिता, जिसे मैं मैं पाप
 बन गया, जिसे मैं बिना मुझे न दिन में बँस न रात को नींद, जिसे
 गरम-गरम घादिपन की सृष्टि में प्राण उन्माध में भर जाते हैं, जिसे
 मधुर वालो घोर धार-मरी चिन्तन प्राणों में नवजीवन फूटती रही
 है, उमे मैं कैसे भार जान सकता हूँ ?

तब जाने हो को क्यों न खत्म कर दूँ ? घावकल तो मरने में बहा-
 सा भी बहुत नहीं होता। समझे-मर में प्राणसंकेत उठ जाते हैं। यही
 घामद डीक होगा। इससे रेखा के भार का रोड़ा हट जाएगा। उसका
 भार हट जाएगा। वह सृष्टी में रात के साथ रह सकेगी घोर
 हो जाएगा। मैं रेखा के बिना नहीं रह सकता। क्या

बहु, देखो, देखो, कसेजे में ददं उठा। पाह, पाह, कौन, कौन यह मेरी पसलियां मेरे सीने में खींच रहा है? ओह, घरे भाई ठहरो। इतने जालिम न बनो, मैं अभी जिन्दा हूँ। जिन्दा बादमी की पसली उसके सीने से भला दस बेरहमी से निक्कली जाती है। धोक, धोक, भजी बहुत ददं है, बहुत—बहुत !

इसरी एक दवा है। अभी यह ददं काकुर हो जाएगा। यह इस दरार में दवा रखी है। निकालकर देखू ? यही है, यही, जरा-सी कानी-कानी खींच है, मगर बड़े काम की है। आज तक मैंने कभी इसे इस्तेमाल ही नहीं किया। खिनीना बनी पड़ी रही इसी दरार में। आज शामद काम था सुनेगी ? गोलियां कहाँ हैं। वे रहीं, मर लेता हूँ। पूरी मारहू गोलियां मैंने मर सी हैं, पर मेरा खान है मेरे लिए एक ही काफी है ! मुह में लबाकर थोड़ा दवा दूया, बस सब काम अपने-आप ही हो जाएगा। किन्तु बाड़े जो भी हो, ऐसा देवका भले ही हो गई हो, पर वह मेरे लिए रोए बिना तो नहीं रहेगी। मेरे जैसा दिलदार बादमी उसे मिलेगा कहा ?—हां, हा, मैं अपने बसूरों पर विचार कर रहा हूँ। मैं अपनी गाराव पीने की भादत की बाकल कह रहा था जिसने ऐसा काम मुझसे पृथक कर दिया।

पर इसरी ही तो बात नहीं है। उन किताबों में मैंने पढ़ा था कि सौरन मनेनी नहीं रह सकती। मैं चुबूल करता हूँ कि मैं अपने बानों में दूबा रहता था। मेरा काम भी तो जिम्मेदारी का था। ऐसा काम प्रतीक्षा करनी पड़ती थी, तो क्या हुआ ! क्या मनुष्य का जीवन भोग विधान ही के लिए है ? नहीं, नहीं, मनुष्य के बहुत से जिम्मेदारी महत्वपूर्ण काम हैं जिनका सम्बंध समाज के जीवन से है। भोग विधान जीवन का उद्देश्य नहीं है, जीवन को बरबस रखने का मोड़न है। इनकी सी बात रेखा ने नहीं समझी। नहीं, नहीं, बसूर मेरा नहीं रेखा ना है। फिर मैं दण्ड क्यों खोयू ? अपनी जान क्यों दू ?

तब फिर क्या कहूँ ? रिवास्वर तो मेरा तैयार है, उसमें बार गोलियां भरी हैं; धब तो बस जरा से साहस की आवश्यकता है। नहीं, नहीं, निर्णय करने की आवश्यकता है। यह ठोक है कि मैं बेवसूर पर यह न्याय-कैसला कहाँ हो रहा है उसल बात तो यह है कि मैं रेखा

के बिना किसी मजबूत बल नहीं उठा सकता, और मैं ऐसा बल बिना जो भी नहीं सकता। ऐसा ही बदनामी जानों में मुन भी नहीं सकता। पर-पुरुष के शक्ति में उसे देख भी नहीं सकता। इसलिए यह मृत्यु दंड नहीं, दवा है। दवा के तौर पर मुझे एक गोली खा लेनी चाहिए।

हां, हां, मुंह में नाम डालना ठीक होगा। या बगल पर ही निगलना चाहूँ? कहीं ऐसा न हो निगलना कुछ आए, और मैं बेचन उसको ही होकर रह जाऊँ; मरूँ नहीं! मुंह में ठीक है; हां, इसी तरह—यही बम।

कौन? कौन? कौन द्वार खटखटा रहा है? धरे वे तो ऐसा का स्वर है।

“सोसो, सोसो, दरवाजा बन्द करके यहाँ बगल कर रहे हो?”

“...धरे तुम ही ऐसा? अच्छा, अच्छा! ठहरो, खोलता हूँ द्वार। बरा ठहरो, बरा ठहरो, बरा...”

लेकिन! यह तो एक सेकण्ड का ही काम रह गया। सत्य ही बनो न कर दूँ!

“सोसो मई, दरवाजा खोलो।”

“खोलता हूँ, खोलता हूँ।”

बसो एक बार फिर ऐसा ही आवाज भर देलूँ। फिर वह क्षण तो बाढ़े जब धा जाएगा। बसो इसे दरवाजे में रख दूँ। कोई बात नहीं, कोई बात नहीं। तुरन्त दरवाजे में रख देना हूँ। दरवाजा खोल देता हूँ।

सुनीलदत्त

“दरवाजा बन्द करके क्या कर रहे थे ?”

“ही ही ही, घातक कर रहा था। घातक ! समझती ही न, घातक !”

“लेकिन यह चोट कैसी है ? नाक सिर धुन से भर गया है !”

“धुन से ? ठीक कहती हो तुम रेखा। मेरे शिरम में धुन बहुत है।”

धीर रेखा ने धूल से धुन पोसा है, बन्ध साफ दिया है, पट्टी बांधी है। वही नर्म-नर्म हुये-लिया है। वही बच्चे की बत्ती के सुगन्ध बंगलिया है, वही मानसा से फूले हुए मान-मान होंठ है। बड़ी तटस्थता से, ममता से पट्टी बांध रही है। मला दग प्रेम की चुनौती पर कैसे बोली जमाई या सखी है ? कैसे इसे मारा जा सकता है। कितने भीसेवन से बाध करती है ?

“चोट मरी कैसे ?”

“दिर गया मैं, घातकारी ने टकरा दिया।”

यह पट्टी बांध रही है, धीर पूछ रही है—

“कैसे टकरा गए ?”

“ही, ही, नक्के के झोंक में मैंने समझा तुम हो। घातकान में ले लिया, सिर टकरा दिया।”

“इतनी क्यों पीते हो तुम ?”

“बेशक, नुरी बात है ! है न ?”

“धीर, धन परा हाथ-मुँह पो नो। बाव सँवार है।”

“तो मैं जो सँवार हूँ, बस घुटकी बजाते काम हो जाएगा। ही—ही—ही !”



भरा हुआ है। वह शायद बाँप रही है।
करती हो?"

"मैं तुमसे कुछ बातें करना चाहती हूँ। मुझे

"सुन बातें करो। लेकिन धीरे पास आओ।

"सब कुछ तुम मुझे बता रहे हो।"

अब फिर मेरी हसी बिखर गई। मैंने कहा :—

"मेरा हाथ खाली है, फिर क्यों डरती हो?"

ही... और, उन बातों को जान दो। लेकिन जान बूझ

"मैं - मैं डरता हूँ।"

"किस?"

"अब हम एक साथ नहीं रह सकते।"

"ठीक है। धीरे?"

"तुम मेरे साथ अपना बर्ताव करो मेरे बर्ताव से। मैं सब
कर सुनी।"

"बहुत गम्भीर बात है। पर मैं कहता हूँ—बहता हूँ, तुम्हें मु-
डरने की जरूरत नहीं है।"

"तो मैं साफ-साफ बातें कह दू?"

"कह दो।"

"मैं राय को प्यार करती हूँ।"

"मैं समझ गया। ठीक है। लेकिन इतने धीरे से मत बोलो रेखा
बासिम। कोई नुन लेगा।"

"तुम मुझे तलाक दे दो। मैं उनसे शादी कर सुनी।"

"शादी की बात बहुत बढ़िया है! बाबे बजे, यहनाई बजेगी—
मजा रहेगा। तो फिर?"

"तुम उपेक्षित होने तो मैं कुछ न कर सकती।"

"यह भी ठीक है। लेकिन मैं... मैं सोना चाहता हूँ।"

"पर अभी मेरी बात पूरी नहीं हुई।"

"तो क्या हर्ज है, अभी ज़िन्दगी भी तो पूरी नहीं हुई।" धीरे मैं
लडखडते पैरों से चलकर शयानागर में पड़ गया हूँ। सुब सोया हूँ। धीरे
अभी साँस खुली है। तबियत तो मेरी ठीक है। ऐसा प्रतीत होता है, रेखा

उनके नेत्रों
में आँसू भर गई
थी, मुझ
को बताया।
मैं मुह
मारा

रेखा

सोचकर उठने के बाद वे लाल्म घोर स्वाभाविक थे ; फिर भी उनके मन में न जाने कैसा भाव था ! वे मुकह हो उनके रंग-रंग से ऐसी तरह थी कि सब कुछ कहने का मुँहमें साहस नहीं रहा । सब के साथ, मुँह में । उन्होंने मेरे साथ चाय दी, प्रद्युम्न की बोतल में डेठाकर प्यार किया । उनकी यह व्यवस्था, सहजता और प्रेम देखकर तो मेरा कनेजा मुँह को छाने लगा । हाँ, मैंने बट्ट की बात है कि मुझे इस पुराने को-वर्ग की छोटकर जाना पड़ रहा है । पर मैं रह भी कैसे सकती हूँ । उनकी पाली में रही कहा ?

मैं छाने मन का चोर भी साबित बना दूँ । रात से मैं लाल्म हूँ । क्याहूँ को क्यों बार-बार टालने हूँ ? वो हूँ, मैं लाल्म लौट कर की म — दही तक पहुँचकर । साधारण मैंने यह बात उनमें कह दी । बट्ट की म न गई यह ज्ञान ? वे मुँहकर कुछ भाव-मयी बेध्टा करने लगे । क्या पहले से ही सब बातें जानते थे ? मुकह श्री उनकी प्रायः बेध्टा उगम वैसी थी ।

सब कुछ साथ दीने रहे, प्रद्युम्न की घोर बड़े प्यार से देखते रहे । क्यों देन रहे वे वे जमा इस तरह ? साधर के कुछ प्रवृत्ता चाहते । कोई गम्भीर समझेदी बात । परन्तु कुछ न सके, बेवम मुँहकराकर गए । लाल्म उन्हें इस बात का इरादा न करी हुआ कि मैं सब-कुछ बातों का जवाब दूँगी । धनस्मान् हो उन्होंने कोई विवर देनने प्रस्ताव किया । मैं नहीं न कह सकी । हम विवर देखने लगे । रा-अर के हँस-हँसकर बातें करने रहे, प्रद्युम्न की बातों का जवाब रहे । बाजार से उसे बहूँ-से लिपिने दिवगाए । रुपये के दस ल फँक रहे वे जैसे रही बागड के दुकड़े हों । मैं हैरान थी । मुँहमें ल

बहर बिबहर दर ही है । यभी एव ॥ रीत भाव हुई है बि के उठ गये हुए । राहोने कहा, "देखा, एव बहुत उम्मी काय बाहर का मया, मैं यभी छाया हूँ । कुछ बीछो ।" घोर के बिना बिनी घोर हैने भाव ने हुए बने दर । मेरे मोहवा काहा दर के नहीं दर । "यभी छाया हूँ, यभी छाया हूँ," करते हुए बने दर ।

इदुल का मन तो बिबहर के मन रहा है । दर मेरा मन दल में है । कहा बने दर के ? ऐसी बीन-बी बाव बाह का नई ? बने छाया-बने की बाव है दर । बिबहर भाव हो रही है, दर दल का मया नहीं है । मेरी बेबीसी दर रही है । मन से यह बीनी नबराहर उठ रही है ! क्या बाव है ? कहा बने दर के ?

बिबहर भाव ही कोई । दल नहीं छाया । बाहर उनीला का रहा का । मैंने बुझा, "बाहर छाया ?"

उनके ली तानी से बुझा, "बीन बाहर ? दल बाहर का राव ?" मुझे मे बीनी घासें बाव उठी । मे बीनी बीन का मेरा उपहास करने है ! दर मेरे छाया होकर कहा, "दल बाहर की बुझी हू ! देखा नहीं, छाया है ?" दर सोहर मे छाया-का मे अबाव बिना, "दल बाहर दल के दर है कि मैं ऐसी मेका छाया का मे जाऊ । बाव के मे गए है ।"

"लेकिन कहा दर है दल दल बाहर बाहरमान् बहाना बनाकर ? बनी उम्मी । एव ऐसी मे छाया ।" सोहर ऐसी मया है घोर मैं ऐसी मे बैठ जानी हू ।

दर भी के नहीं गूँचे हैं । मेरा मन भव मे बाईं उठा है, घोर मेरा कनेवा झुड़ की जाने मया है । न जाने क्या होवामा है । लेकिन छाया के गए कहा ? लव-लव बाव मुझे पहचान लया है ।

दल बज रहे हैं । दल नहीं छाया । माना बिब प्रतीता मे बीनी हू । ऐसी प्रतीता मेने बीन मे कभी नहीं की बी । मेरे प्राण भावुन हो रहे हैं । जीवन मूना हो रहा है । क्या बाव है यह, मैं नहीं जानती हू । परती मया तथा मन रहो है, बीनी के लव-लव बने जाने हैं । कभी दर मे, कभी घराहे में, कभी मान मे बाहर देव रहो हू । कहा है दल ? उनके बिना सारी दुनिया बाव मूनी नजर का रही है । बाद भाव है । तारे सब भव भुके । बिबाव भुक्त गए । बाव-बाव है—बाहर दुनिया मे बी

धीरे धीरे-एक-एक तुम्हारे नाम प्रथम ही कर दिया है। धाघो, धीरे पास धाघो। मेरे धंके में बैठ धाघो। उसी भाति-त्रिभु भाति व्याह के बाद बैठती थी। अपनी भूवस्तु-मेरे कंठ में डाल दो धीरे एक प्यार दे दो, कम एक प्यार। प्यारी रेखा, कासिम, स्वीट ! धाघो, धाघो। हाँ, हाँ, एक बात बता दो, प्रसन्न...लौरे, जाने भी दो। सब एक साथ-मर के लिए जात बात जानकर भी क्या कहेंगे ?...

"धाघो, धाघो मेरी प्यारी रेखा। इतनी निकट था धाघो कि मेरा हृदय अपनी अन्तिम धड़कन तुम्हारे हृदय की धड़कन से मिला दे।..."

"लेकिन, लेकिन धरे, यह तो बेहोश हो गई। पदम ! कहीं पर गिर गई। फिर कट गया हृदय ! कितने दुःख ? कितने...मोह ।"

सुनीलदत्त

मन मनु विचार करते ही मैं मन में लिखता था। मन्त्र बानों पर ध्याने, नीचे मोचकन से धनरा कर्मका लिखक मन लिखता था। मैं ध्यान नहीं था, मन बानों को ही-हीन मनकाता था। मेका मन में ध्यान नहीं हुआ करता था। बहुत करता कि मैं मन में, उनका ध्यान के हुए में लिखता था, मन मुझे मुझे मनकाता नहीं मिली। मेरे मेरे ध्यान के लिए मन बहुत ही लिखित बात दे कि मैं एक ध्यान के लिए ध्याने मनुष्य जीवन की बनि मेरे को नेकार हो मन्त्र। मन का ध्यान मन मनकाता था। मैं मन्त्रधारी धीर धीमन्त्र के काम लिखा, धीर ध्यान को धर्मिधर्मियों के धनुषका बानों की धनका केका की। मैं ध्याने मन के मन्त्र विचार को काहु में मनने के लिए हुए मुझे मन मन पर लिखता था। धी-काय करना है, ध्याने मेरे मन मुकाता है किन्हीं ध्यान-मुक्ति का इनका ध्यान धारणा होता है कि मे मन धनुषिकाओं को बर्तान पर मेरे हैं। धनका मे मन बानों ऐसी है जो मायाका हृष्टि के धनकों में ध्यानी थी। ध्यान मायाका वह लिखता न करे कि मैं मुझे ध्याने ध्याने ध्याने धी लिखती थी या मुझे ध्याने-ध्याने ध्याने मे मनकाता रहा—क्योंकि उन बानों को मैं ध्याने कि हीन नहीं मानता था। मैं धीकार काका है कि जीवन के मानसिक मनुष्यों में मेरी कभी लिखकनी नहीं रही, धीर मन के मनोबैज्ञानिक ध्याने मे मैं धनलिखित हो रहा। मन मे धनु की धनुषी, विचार धीर इच्छा के प्रकन होने हैं। उनमें धनका इच्छा धीर धनका विचार भी होने हैं। उनमें धनु मे कान-ध्याने होने हैं धीर मे काम-ध्याने मनुष्य के मन मे कान-मन्त्र धीर जीवन मे उन्माह एवं धानन्द प्रदान करने हैं। इन ध्यानेको मन मे काना नष्टि काम है। जो ध्यानी मन्त्रका ने निर्माण में ध्यान मे रहा हो उसमें यदि

नाम-धावेनो का विराध ठठ खड़ा हो तो वह उस व्यक्ति की क्रियाशक्ति को दूसरी ओर मोड़ देगा—यह एक बहुत बड़ा खतरा है। नाम-धावेन या यौन-जीवन का महत्त्व सबके सामने खोलकर नहीं रखा जा सकता। यह सामाजिक हितों के विषय है। इसीसे हम मामले में समय का सहारा लेना पड़ता है। पर समय की भी तो परतें, सीमा है। नाम-धावेन और समय की सीमाएँ जहाँ टकराती हैं वहाँ कुछ गलतियाँ होती हैं और वे कभी-कभी ऐसी घाती हो उठती हैं कि मनुष्य का सारा जीवन नष्ट हो अस्त-व्यस्त हो उठता है अथवा मनुष्य आत्मघात या धूल की पर बँटना है।

देखिए, धूल के नाम से धार करिए मत। इस वक्त मैं इस स्थिति में हूँ कि मैं धूल करने की मनोबैज्ञानिक पुच्छभूमि पर विचार करने चला। मैं कोई मूढ़, कोपी और ईर्ष्यालु पति नहीं हूँ। एक सहृदय और नवान, अपनी सब जिम्मेदारियों से परिचित पति हूँ। तो सुनिए—। मेरी बान सावध धार फिर न सून सकें। कुछ ऐसी अवस्थायें घाती जब महत्त्वपूर्ण घातें बहुत हल्की दिखाई देती हैं। पर उनके धूल से। बड़ी-बड़ी बानों के निरुधर पर पहुँचते हैं। उन समय हम उनकी पर देखने भी नहीं। हम मनुष्य नहीं मोचते कि वे मामूली बानें बार्ब-पराण के निचम से बँधी हुई हैं, और वे किस रूप में घटित हुई हैं उनमें पते का मे भी घटित हो सकती हैं, जिनमें जीवन-परण का संकट घात स्थित होता है।

यौन जीवन का धर्म है—संतुलित, धर्मात् जिसकी चर्चा नहीं करनी चाहिए। परन्तु सब नाम-वृत्तियाँ पतन का चिह्न हैं, वह मैं नहीं जानता। संभोग के आनन्दन में अनिर्णयित सम्बन्ध हम आदिम ज्ञान। लेखन मात्र भी सम्पन्न तक में बँसा ही देखते हैं। आदिम बाल से नवर धार तक यौन-वृत्तियों के समूह में—संतुष्टि और मस्कीरुति। बीच इन्द्र मोक्षुद रहा है। प्रकृत यौन तुल्यी वृष्टा से मानव-जीवन पर पतित सम्बन्ध है। नाम-धुआ एक भीषण भूख है। यह वह बल है कि जिनके द्वारा नैवमित्त यौन वृत्ति उन्नी प्रकार अपनी धर्मवृत्ति करती है जैसे यौनवृत्ति की निमर्ष-वृत्ति भूख के द्वारा अपनी धर्मवृत्ति करती है, यौन उत्तेजन और संतुष्टि के बीच बहुत-सी बानें हैं। वे

तात्पर्यिक होते हैं, और सामाजिक भी, सामाजिक भी हैं और व्यक्तिगत भी । उन कामों में जीवन संघर्ष की पराकर्मणा है । सामाजिक और व्यक्तिगत दोनों का ध्यान में रखते हुए ही हम, देश और दुनिया के उत्थरण और विकास के लिए काम करना चाहते हैं । ऐसी धारणा सामाजिक आदर्श विमल और निर्मल हो जाने है जो हमारे अन्तःकरण में निहित रहित है ।

मैंने जब अपना कामना के लिये । तेरे दुर्भाग्य को और के लिये उपायना देखित है किने वृत्तव्य चर्च को रक्षितना को संकट शिवा है । कामना हम संकल्प में कोई महत्त्वना नहीं करना । कामना नहीं है, कोई हर्ष नहीं, दुर्भाग्य की दुर्भाग्य के लिये रहना नहीं चाहती । दुर्भाग्य के लिये नहीं करती तो कोई काम नहीं है । उसे बहुत चली जाने दो जिसके लिये देव करती है, और दुष्ट कोई भी दुष्ट के लिये करती की लम्बी दृष्टि को, तो दुष्ट के लिये करे । परन्तु मैं हम कामना को कैसे स्वीकार कर सकना हूँ । मैं व्यक्तिगत की दृष्टि, वृत्तव्य शिवा दुष्ट चाहिताना वस्तु है । फिर केवल धार ही तो रक्षित-वृत्त के बीच का सम्बन्ध नहीं । रक्षितिक और वृत्त-के संघर्ष है । नहीं, ऐसा व्यक्ति दुष्टिना के लिये नहीं रहना चाहित तो दुष्टों की रक्षितों को दुष्ट करना है, वृत्तव्य की रक्षितना और निष्ठा को नष्ट करना है । मैं उसे धार मां कामना । परन्तु वह मेरा विश्व का । हमका धार मां धारना है । बीने दिन धार धारने है अब हम दोनों दुष्ट हमने के, जाने-जीने के, मोक्ष-धारा करने के ।

तो न नहीं । मैं उसमें कहूँ कि वह रेखा मे स्थापित कर मे और धारने की गोपी धारकर धारमहत्वा कर मुवा । वय, वक्षेय वय । मेरी भी सब तकलोके लय और रेखा की बाधा दूर ।

घोड़, वह घंटे मिर में कैसे तेज बाकू बन रहे हैं ! लेकिन अब मैं बेहोश होना नहीं चाहता । रिवास्कर डोक है । गोमिया मरी हुई है परन्तु आवश्यक है कि दरीर और वय में पूरी स्फूर्ति हो । मैंने इत्तर स्नान किया है, कपड़े बदले हैं । डोक-डोक दरीर-विन्याय किया है । और मैं हंसता हुआ रेखा के साथ चाम को रहा हूँ । निश्चय देखने का मैंने ही प्रस्ताव किया है ।

रेखा भीता-वकिता हरिणी की धानि चोकन्ती है । उसकी मनो-

दशा देखकर दुःख होता है। भला मेरे रहते रेखा की यह हालत! परन्तु भ्रमसंसार, भाव तो वह मुझीसे डरी हुई है। पति—त्रिमूर्ति के भ्रम में स्त्री संसार के सभी भ्रमों से निर्भय और सभी भ्रान्तियों से भरपूर रहती है, तो रेखा उसी पति से भयभीत है। न मैं उसे दाद दे सकता हूँ—धीरे न वही मुझसे भ्रम भोग सकती है। उसकी दशा तो उस पशु के समान है जिसे भान हो गया हो कि सभी उसका बंध होनेवाला है। कितनी कल्याणपूर्ण है उसकी दृष्टि! देखी नहीं जाती। कलेशा मुह को धा रहा है।

शायद उसके मन में पश्चात्ताप का उदय हुआ है। पर अभी तक विगड़ा कुछ भी नहीं है, यदि वह पश्चात्ताप करे, यदि वह फिर बैसी ही समल-बदल घतघात कमल के समान उज्ज्वल हो जाए। उसके घघर फटक रहे हैं। उच्छ्वस—घमाने घघर। वह मुझ पति से भी डरते-डरते संकोच से बात करती है—विलकुल जैसे पराई हो।

काम कि फिर दे दिन सौट धाते! काम कि भाग कोई शीतल भाकर कह दे—घरे दल, वह सब तो सपने की बातें थीं। यह तेरी रेखा तो वही है—वैसी ही है। इसे घर में भर। इसका बुझन से। किन्तु धीरे, घब इन बातों में क्या रखा है!

बाय खत्म हो गई है। और हम लोग रिक्कर देखने जा रहे हैं। प्रद्युम्न बहुत खुश है। हां, प्रद्युम्न की बात तो रह जानी है। प्रद्युम्न किसका बेटा है? क्या मेरा है? कौन जाने! पृथ्वती औरत का क्या मरोसा! सब तो बेटे भी विश्वसनीय नहीं रह जायेंगे। पत्नियाँ भी एगनिष्टता नष्ट हो जाएगी। समाज ने, कानून ने स्त्रियों की बदल-बदल की छूटी दे दी है सब तो। सब तो संसार के सब पुत्र सदिग्ध हो गए, अपवित्र हो गए, पिता के प्यार और विश्वास से वंचित हो गए! इस पुत्र का पिता कौन है, इस बात को तत्पक्षः केवल एकमात्र वही धीरेन जाननी है, जो बूझी हो चुकी, विश्वासपात्रिनी हो चुकी, पर-पुरुषगामिनी हो चुकी! कौन पति उसपर पतियाएगा?

जो चाहता है पुछूं रेखा से। शायद सच्चा जवाब दे दे! शायद प्रद्युम्न मेरा ही पुत्र हो, मैं ही इसका पिता होऊँ! सब तक तो मैं अपने ही को पिता समझता रहा था। पर यह मैं नहीं जानता था कि रेखा

बेवका है, पर-गुरुगमामिनी है। धन का जैसे कोई जंजीरों में जकड़कर मेरे मन को बांध रहा है। प्रद्युम्न की तरफ बढ़ने ही नहीं देना। पर बेचारे बालक को क्या पता है इन सब बातों का! वह तो धात्र बहुत मूढ़ है। इनने दिन में वह परेधान था—मैं बाहर गया था, रेखा घर से बेपर हो रही थी। बेचारा बच्चा मां-बाप दोनों को खोकर घोला रह गया। धात्र उसे प्राण है—मां भी, बाप भी। पर नाकद प्यार न बाप का प्राण है न मा का। मेरे मन में तो चक्र का घूम मवार है। और रेखा यदि उसे प्यार करने लगे तो घर से बेबर क्यों होनी! कुछ समझाया था तो मेरा ही सकता था, बेचारे बालक का तो नहीं। पर जाने दो इन बातों की। पुराने सम्पास ही से सही, मुझे प्रद्युम्न को प्यार करना चाहिए। रेखा को तो मैं प्रेमी भी प्यार करता हूँ—बेवका को, कुल-कलंकिनी को। फिर बालक ने क्या बिगाड़ा है? वह जान भी मैं कुछ मूढ़ा, यदि मैं बापम सहो-मनामन भौट पाया, यदि मुझे स्वयं न मरना पड़ा। और यदि मुझे ही मरना पड़ा तो केवल कुछ बड़ी के जीवन के लिए एक और दर्द को दिन में क्यों उत्पन्न करूँ!

प्रद्युम्न बहुत काँते कर रहा है, और मैं सबका उत्तर दे रहा हूँ। कुछ ठीक, कुछ बे-ठीक। रान मेरे बचपन में बहुत चीखें उभे मिल गई हैं। मेरे धात्र से रेखा ने बड़े मझोच से वह कीमती साड़ी पहनी है जो मैं दूर पर जाकर खरीदकर लाया हूँ उसके लिए। क्यों साहब? मझोच से क्यों? बाप से क्यों नहीं? खैर, जाने दो।

गोकर कार ले लाया है। अब वह इन से वह देख रहा है हम लोगों को। जैसे वह राबड़ा हो। नगता है वह मन ही मन मुझपर हंस रहा है, मानो कह रहा है—घरे, बड़े गधे, लानत है तुम्हारे! तू इतना बड़ा धात्री है तभी इन हरामजादी की सजा-बजाकर ले जा रहा है, हंसते-हंसते बातें करना दुष्ट। घरे, हम छोटे धात्री यह सब बर्दाश्त नहीं कर सकने। मैं होना तो मंडासे से निर काट डालता खिनाल का। खिनाल धीर का भी भला क्या पतियाव!

... पासे कह रही हैं और मैंने उससे धाँसे पूरा लो
... मरी नजर ने मेरी ओर देख रहा है। सब सब कुछ
... जानना चाहिए था—वह मैं नहीं जानता था।

यह बाजार था क्या । कनाट प्लेस ! पहले जब रेखा यहाँ मेरे साथ
घानी की दस्तों चोरे सरीदने का प्रोपाम बनाती हुई, तो निम्नो
प्रचंडी लगनी थी तब ! निम्नु घाय तो यह चुन है । घड़ी, रेखा कहाँ है
यह ! यह तो रेखा की साथ है ।

"बली रेखा, बली बच्चे, घायो, सरीदो ! अपनी पसन्द की चीज ।
घोर रेखा, जरा इधर तो घायो । एक चीज मैंने पसन्द की है तुम्हारे
निम् । देखोगी तो मुझ हो जाओगी ।" रेखा है कि उसके होठ सूख रहे
हैं । घायों को पुनर्निर्मा घुम रही है । वह हर रही है । घोर मैंने एक
होने की घायुड़ी सरीदकर उसकी नाकुक उकली में डाल दी है । जो
साइब, मेरी सगाई हो रही है रेखा से । सुनिमा मनाओ, बगलें बजाओ ।
घायो घाय सुब लोग घायो, बिछाइया घायो । सुनी का बीजा है,
मानन्द का प्रचमर है । सगाई हो रही है मेरी रेखा से ।

क्यों ? घाय चीज क्यों नह ? क्या मैं बुझ हो गया हूँ ? घायी तो मैं
चाओम का भी नहीं हुआ ? रेखा तीस के पेटे में है । हम दोनों बीच
में भग्न हैं । बराबर की जोड़ी है । हमारी सगाई क्या टोक नहीं है ?
घाय हमने हैं । हसित साइब, हसित, यह हमने ही का बीजा है । मैं भी
हम रहा हूँ । हा हा हा हा ।

लेकिन रेखा चुन है, घरमा रही है, सगवा हर रही है, घायी नहीं-
नकेसी कुपडिन की भाति । न जाने क्यों फिर फिर मेरे पाकू चलने लगे ।
घाये घाये न फिर, जग घोरज घर । घब कुव डी घायी की बात है ।
नग घुग दलाव हा जाएगा । फिरदर्द का सपुक दलाव मेरी जेब से
है ।

यद्यपि न बहुत-सी चीजें सरीदी हैं । रेखा उसे रोच रही है घोर मैं
बडावा दे रहा हूँ - सरीदो, सरीदो बच्चे ! घुव सरीदो । लेकिन यह
क्या बात है—बडा कदम मेरी जबाब बटती है । खर, सरीदो बच्चे,
सगीदा, घुव । घायी जेब में रुपये हैं, बहुत हैं । घड़ी-घर बाद ये सब मेरे
जिब काम पाएंगे भवा ! नमोको खर्च कर दिया जाए ।

निम्नो या गया । निम्नर कौन-सी है, यह जानने से मुझे क्या
मगराह है ? मैंने टिकट सरीदी है । टिकट लेकर घन दिया, किल्ली
लेना भून गया । यह पुकार रहा है—फिरतो बापल सीनिए साइब ।"

मैं एक सौनिपानिपटा हुआ था। वह मुसल करके निकला था। मैंने कहा, "राय, मैं था पहुँचा।"

वह धूमकर भरा हो गया। भय से उसका चेहरा पक हो गया।

"बरो मत, बरो मत ! यह कहो, क्या तुम रेखा से शादी करने को तैयार हो ? क्या तुम उसे धीरे उसके बच्चे को आसाम धीरे बका-दारी से रस सफोने ?"

सीबिए साहब, क्या दिलचस्प सवाल मैं कर रहा हूँ ! सभी-सभी तो मैं रेखा को सगाई की धंभूटी पहनाकर आया हूँ, धीरे सभी यह सवाल कर रहा हूँ। मगर हममें आश्चर्य की बात क्या है ! दुनिया में बहुत-सी हिमचलियाँ हैं। एक यह भी सही।

"हाँ, राय, जवाब दो।"

राय एकटक मेरी धीरे देख रहा है। एक सौनानी मुस्कान उसके होठों पर छा गई, वह कहता है :

"क्या रेखा ने आपसे कुछ कहा है ?"

"नब कुछ।"

"लेर, धच्छा ही है।"

"नहो, तुम उसने शादी करोने ?"

"नहीं।"

"क्यों नहीं ? क्या तुमने रेखा को घर से बेचर नहीं किया ? उसे तुमने व्यापारिणी नहीं बनाया ?"

"वह स्वयं मेरे मिर था परी। वह तुम्हें छुणा करती है।"

"धीरे तुमने प्रेम करती है ! तो तुम उससे शादी क्यों नहीं कर लेने ?"

"तब तो जो-जो सींगने मेरे साथ सीठी हैं, मुझे उन सबसे शादी बननी पड़ेती ?"

"बदमाश, दुभा !" धीरे मैंने रिवास्वर निकाल लिया है। राय की धाने पैल गई है। उसने कुछ कहना चाहा, पर होठ दिनकर रह गए हैं। मुँह से बात नहीं फूटती है। वह बापरम की धीरे सिसक रहा है।

मैंने कहा, "हिपना नहीं। रिवास्वर में बाह्य सीनिया है।"

घोर वह चीने की तरह मुझपर टूट पड़ता है। उसने मेरी कलाई पकड़ ली है। हम गुन रहे हैं। यह प्राणों का मुँह है। मैंने उसे पकड़ा है। उसका सिर फट गया। वह पायल साइ की भाँति करा रहा है।

मैंने दिवाल्बर को फिर जाँच लिया है। मेरी उँगली छोड़े पर मैंने उसे दबोच रखा है।

“सब बोल, शादी करेगा?”

“नहीं।”

“नहीं?”

“नहीं।”

“तो से।”

घाय!

घाय!!

घाय!!!

सब क्षम। खेन क्षम। मर गया मुस्ता। गोली ने भेजा कोड़ दिया। कितना खून निकला है!

घोर एक बार देखकर मैं पल देता हूँ। बेबी बीबनी हुई घानी है। एक नौकर भी है।

“हाथ ऊपर करो!” मैंने कड़ककर नौकर से कहा। नौकर हाथ चढ़ाकर खड़ा हो जाता है।

“रास्ता छोड़ो!” मैं बेबी को एक घोर घबरेलने हुए पीछे धाका हूँ।

बीबीशर और माली गाड़ी की राह रोके खड़े हैं। मैंने दिवाल्बर दिवाल्बर जगहें बरा दिया है।

घोर मैं घर लौट रहा हूँ। सामने की घड़ी में ध्वारह बज रहे हैं। सभी दिवाल्बर में तो गोतिरा घोर हैं। क्या हजे है एक घोर लचक कर दु! यहाँ कौन मेरा हाथ रोकेगा! लेकिन एक बार रेखा को घोर घायल भर देल नु!

मैं घर घा गया हूँ। रेखा पायल की भाँति दीरी घाई है। उसने बेहरे पर रक्त की एक भी बुद नहीं है। मैंने उसे बसा दिया है कि मैंने
 १५ बापा है। मैं उससे अनुरोध कर रहा हूँ कि वह घाना

एक नर्म-नर्म घालिगन मुझे दे, धीरे मेरे कंठ में मनवाही खानकर मुझे गोली मार दे : बूझ रहा था दिक्कत नहीं होगी, कनपटो... पर वह बेहोश हो गई है। मेरे मन की मन में रह गई। उसका फिर फट गया है।

उसे बिन्दर पर निटाना चाहिए। मैं उठा रहा हूँ। धक में भर रहा हूँ।

परन्तु यह लीजिए, पुमिग था मई। “घाइए, घाइए।”

“जी हाँ, मैंने नाथद एक घाइसी को गोली मार दी है। लीजिए यह रिबान्तर है। इसमें धमी ली गोमियाँ धीरे हैं। हाँ, हाँ, मैं जानने को नगर हूँ। मेजिन जरा-ना ममम दीजिए। रेखा बेहोश हो गई है। इनके फिर से थोड़ा मग गई है। जरा मैं इनके लिए...”

“धमा लीजिए, मिन्टर दल, हम मजबूर हैं। घाइसी धमी बनना चाहिए।”

“तब लाकारी है। खनिर् लाहूब।” लब लीवर-बाबर था जुटे हैं प्रद्युम्न भी जग गया है। वह रो रहा है। ‘हँसी, हँसी’ बुझार रहा है।

यह मैं क्या बट्टे ? क्या बक ? क्या कर सकता हूँ ?

“बेटे मेरे, धमी का ध्यान रखना।” मेरे मुह से निक्का। धम्म भी निरमे, धीरे निरमने जमे जा रहे हैं। बूझा वाली रो रहा है। वह रोने-रोने मेरे बचपों पर निर गया है। मैं बड़ रहा हूँ। “राम, मामलिन का ध्यान रखना। धमी हाकटर को गुना मेना। लो के बाधिया है।” बाधियों का गुनाया केह मे निबानकर मैंने जमे दिया है।

“खनिर् लाहूब !... मैं जा रहा हूँ रेखा, मैं जा रहा हूँ, जा रहा हूँ। घालिग, मैं... मैं जा रहा हूँ। बिदा, धमबिदा !”

रेखा

घर के ही चिराग में घर में घाग भग गई। घबने ही हाथों में घबना घूराग मुटा दिया ! हाथ रे भाग्य ! इमे ही कदने है स्त्री-बुद्धि, गर्वमहा-कारिणी बुद्धि ! वैरा होने ही में क्यों न घर गई ! माँ-बाप ने गप्पा घोंट-कर क्यों न मार डाया ! जैसे सावित्र घबने ही बच्चों को ला भालती है, जैसे ही देने सोने का घर कूक दिया !

साज भी मैं नितेज्जो कहाँ नक कक ? घर तो घर-घर, द्वार-द्वार मेरी ही यगोलावा का बसान हो रहा है। ऊँचे घर की बेटी और ऊँचे घर की बहू, उच्चशिक्षा प्राप्त में घन में कुतिया बन गई। दर-दर, गली-गली कुत्तों के साथ मारी-मारी किरने वाली कुतिया ! हाथ राम !!

कंठी भयानक है यह इद्रिय-वासना, जो समाज के सारे ही हाथों को ध्वस्त-भिन्न कर डालती है ! परन्तु एक घनहाथ निर्बल नारी को समाज ने किसलिए केवल वासना का माध्यम बनाकर घर में रख छोड़ा है ! पुरुषों को हजार काम हैं, जिम्मेदारियाँ हैं। उनकी समूची चेतना सारी ऊर्जा-शक्ति उसमें उलझी रहती है। केवल विधाम के बल या परा मस्तिष्क खाली होता है, वासना का आनन्द वे उपभोग करते हैं मानसिक भोजन के रूप में। घर स्त्रियाँ तो चौबीसों घंटे वासना में डूबी बोर होती रहती हैं। उन्हें न कोई काम है न जिम्मेदारियाँ हैं। मस्तिष्क शून्य रहता है और समूची चेतना बनाव-गृहकार और वासनामूलक प्रसाधनों और वस्तुओं में डूबी रहती है। उनका यही काम रहता है कि दिन-भर पुरुष के आगमन की प्रतीक्षा करती रहें, और रात-भर वासना की भाग में अलें, झुनें। पुरुष की प्रतीक्षा पूरक रूप में नहीं, जीवनसाथी के रूप में नहीं, वासना-पूर्ति के माध्यम के रूप में। कंठी

भयानक है यह एकान्ती समाज-व्यवस्था ! सराब, बहुत सराब । स्त्रियों का भविष्यसित भस्तिष्क, भावुक हृदय यदि वासना के भावेश में धपना संतुलन खो दे, तो यह केवल उसीका दोष नहीं है, समाज-व्यवस्था का भी दोष है ।

यौन भावेन मनःशारीरिक भावेन है । इसमें एक वह शरीर-भावेन है जिसका सम्बंध धननेन्द्रियों की चरम उत्तेजना के बाद क्षरण पर सीमित है । दूसरा वह जो प्रत्येक जोड़ीदार में एक-दूसरे के निकट शरीर से मानसिक सम्पर्क स्थापित करता है । यौन प्रक्रिया बड़ी जटिल है । उसका सम्बंध मनःशारीरिक भावेन से है । घरेलू जानवरों एवं सभ्य मनुष्यों में तो यह एक सरल क्रिया है, परन्तु प्राकृतिक अवस्था में यह कभी सरल नहीं है । भावेन की चरम प्राप्ति के लिए पुरुष को प्रतिपक्ष क्रिया और धारम-प्रदर्शन तथा स्त्री को दीर्घ साधना और ध्यान रना पड़ता है । मूल सत्य यौन स्फीत की वृद्धि है । वह दोनों में समान रूप से, पूर्वापग द्वारा, जो शारीरिक भी हो और मानसिक भी, होना चाहिए । इस यौन स्फीत की चोभी-सीक वृत्ति ही में प्रेम की ओर षयी होनी है, लिची हुई औरत अवश अवस्था में एक पुरुष को त्याग कर दूसरे पुरुष तक पहुंच जाती है, और यह मूल आती है कि उसका कोई सामाजिक रूप भी है या नहीं ।

स्त्रियां दुरदर्शिनी नहीं होतीं । उनमें स्वाभाविक दुर्बलताएं भी हैं और मानसिक भी । इसीसे समाज ने उन्हें धपने नीति के बंधनों में बसकर बांधा हुआ है । धान तो मैं उन सब बंधनों के महत्त्व को, आवश्यकता को समझ गई हूँ । कल तक ही तो मैं उन सब बातों का प्रबल विरोध कर रही थी । तब मैं नहीं जानती थी कि मनुष्य का सामाजिक संगठन ही उसके स्वार्थ के सब स्वाधों का संरक्षण है । पर 'भव पक्षपात होत क्या, अब बिड्या भुग गईं खेत !'

किन्तु यह दत्त की रक्षा कैसे की जाए ? मैं धपना शरीर, प्राण और धावरु तक दे सकती हूँ । मैं जान की गहरी खगा दूगी और प्रत्येक मूल्य पर उनके प्राणों की रक्षा करूंगी । मैंने बेबी को मिला लिया था—वह राजी भी हो गई । और हमने तय किया कि हम धपना बयान बदल देंगे । यह बयान दे देंगे कि हत्या मैंने की है । बेबी गवाही देने की राजी

दिष्ट पुरुष समझते हैं कि व्यक्तिगत ने आदमी का बगदा कुछ नहीं बिगड़ता। शरीर को धो-धोँझकर साफ कर लिया जा सकता है। वे प्रेम को महत्त्व देने हैं; काम-वासना का वैज्ञानिक विश्लेषण करने हैं, परन्तु वे भूल जाते हैं कि कुछ मंचटकालीन परिस्थितियाँ भी होती हैं, जब स्त्री की, पुरुष की और कभी-कभी सबकी कुर्बानियाँ करनी पड़ती हैं। तब सुख-सुविधा और व्यक्तिगत अधिकार नहीं देखे जाते। दुनिया में युद्ध होते रहे हैं और तब लाखों मनुष्यों को रणभूमि में जूझ मरना उनके जीवन का सर्वोत्तम ध्येय माना गया है। परन्तु जीवन का सर्वोत्तम ध्येय हमी-सुखी ने ओझित रहना है, मरना नहीं। पर यह आपत्कालीन धर्म है।

हो सकता है कि स्त्री-पुरुषों को गृहस्थ-जीवन में शारीरिक बाधाएँ हों मानसिक बाधाएँ भी हों—इतनी बड़ी, इतनी गम्भीरमान कि जिनके कारण जीवन का सारा आनन्द ही खत्म हो जाए। उस समय स्त्री या पुरुष दोनों को अपने उत्कृष्ट चरित्र का, त्याग और निष्ठा का महारा लेना चाहिए, वासना का नहीं।

राज जैसे सम्पन्न समाज में बहुत हैं। वे लोग नग्न युवाओं के बीड़े हैं, सम्पत्ति की मर्यादा को दूषित करनेवाले। धान उन्हें सह सकते हैं, बर्बाद कर सकते हैं। क्योंकि धानमें सत्माहस का धभाव है, स्वभाव की दुर्बलता धारणमें है। पर मैं बर्बाद नहीं कर सकता। मैंने उसे बर्बाद नहीं किया। एक गन्दे बीड़े को मार डाला। समाज को एक अपवित्रता से मुक्त कर दिया।

अभी जेल से आशानत घाने हुए मैंने देखा है घनातन के बाहर हजारों नर-नारी मेरे लिए दुषा माय रहे हैं। कालकर नारिया बहुत उत्तेजित हैं। वे नक्ष मेरे सम्पर्क में हैं। वे समझती हैं, मैंने ठीक किया — समाज के खतरे को खत्म कर दिया, नारी की पवित्रता का धना पौष्ट दिया। वे नांग चाहते हैं कि मैं हत्या के अधिपति से मुक्त हो जाऊँ; पर यह मैं कैसे चाह सकता हूँ।

इतना भारी मैंने समाज का उपकार किया है, और घाने चरित्र को प्रतिष्ठा की रक्षा की है; परन्तु कानून को घाने हाथ में लिया है। मेरे लिए यह प्राकृतिक था, अनिवार्य था। जब कानून सत्यता काय करे

मुझे उत्तम दण्ड दे । मैं नहीं चाहता कि लोगो के सामने यह उदाहरण कायम हो जाए कि कानून को हाथ में लेना व्यक्ति के लिए उचित है, और अनधिकारी लोग ऐसा करें ।

समाधारण काम समाधारण पुरुष ही कर सकते हैं, जिनमें समाधारण क्षमता, शक्ति और पैरों हों । वही समाधारण काम मैंने किया है । इसीसे मुझे अपने ऊपर, अपने काम पर गर्व है । आप कह सकते हैं कि मैंने कानून के विरुद्ध काम किया है पर धार यह नहीं कह सकते कि मैंने नीति-विरुद्ध काम किया है । आप मुझपर कायरता का आरोप भी नहीं लगा सकते, ओकि एक अस्थिर व्यक्ति आरोप है । इस यही मेरे लिए संक्षेप है ।

आप कहेंगे, रेखा ११ भी तो दोष है । वह भी तो वासना के बहाव में बह गई । उसने तो कुलटा का आचरण किया, पति से विद्रोहवादी किया, पर-पुरुष की धनता देह सौंप दिया । उसे क्यों नहीं मार डाला ?

ठीक है, मार शायद यही करते । राय को मार डालने का शायद आपको साहस न होता । पर मैंने ऐसा नहीं किया । रेखा पच-भ्रष्ट हो गई । कुलवधु की मर्यादा उसने भंग की, मेरे साथ विद्रोहवादी किया । सब ठीक है । उसके विरुद्ध ऐसे ही और भी आरोप लगाए जा सकते, हैं, जो आधारण नहीं हैं । समाज और गृहस्थ-धर्म की पवित्रता को भंग करने की दृष्टि से वे राय के अपराध से कम नहीं हैं । मैंने रेखा को गोली नहीं मारी । उसे अपनी सब सम्पत्ति की स्वामिनी बना दिया । परन्तु आपने देखा नहीं, वह दण्ड से विरक्त नहीं रही; उसने अपने-आपको स्वयं ही दण्ड दे डाला । ऐसा दण्ड जो मृत्यु से बहुत अधिक भीषण और कष्टकर है ।

मैं घोषित करता हूँ कि इसे जीवित रहने दिया जाए—सब सुख-सुविधाओं के साथ समाज के बीच । और दुनिया को देखने का अवसर दिया जाए कि रेखा के समान वासना का शिकार बननेवाली कमजोर मन की स्त्रियों की घन्टा में कैसे दिन देखने पड़ते हैं; उन्हें समाज से कटकर, समाज की विष-दृष्टि में तिरस्कृत और दर्द-भरा असह्य जीवन व्यतीत करना पड़ता है—स्वीडन के सब आशीर्वादों, सम्मानों, आनन्दों, सुरक्षाओं और पुष्पों से रहित ।

[illegible]

रेखा

साज साजन की बिदाई का दिन है। झूल रहे हैं वे। मेरे साजन।
मेरे कृष्ण कन्हैया। देखो लोगो ! देखो। घरी कुलवधुघो, भले घर की
बहुघो, तुम भी देख लो। कानो बड़ी-बड़ी भांखो का मुफल से लो।

हाँ, हा, मैंने ही उन्हें उस झूले पर बसाया है, उनके प्यार का बदला
पुनाया है। कीज औरत मेरे इस काम में बराबरी करेगी !

घरी, वे झूल रहे हैं। गाधो, गीन गाधो। बड़ी भारी बरसान पा
है। सावन-भादों की झड़ी लगी है। काले-काले बादल उमड़ रहे हैं।
गरज रहे हैं बदरा। सावन में खन सजनी झूनी है। साज मेरे साजन
झूल रहे हैं। गाधो री गाधो, घुर क्यों हो ! क्या सब भर गई ! दुनिया
मे इतनी भीरु हैं, घर में घबेरी ही ना रही हूँ। कोई मेरे मुर में मु
महीं बिनाजी। क्यों ? घरी सावन है, सावन क्या रोड-रोड भाठा है
गाधो, गाधो।

झुनना झुनना

झुनना---

ओह ! सावन-भादों की यह झड़ी ! दस बार बरसकर जायद कि
कभी न बरसो वे भाखें। कच्छ बरसो, बरसो। घरी बरसो, मु
बरसो। मेरे साजन झूल रहे हैं। झूनी, प्यारे झूनी। सब मुख मिल ग
है ! भाखें मुद रई हैं। ददन निदान हो गया है। बागो मूठ और स
निस्पद हो रई है। छोक, छोक ! पानन्दारिक को घरी ठो दगुका
है। घर इस बार घबेने ही यह पानन्द निदा ! झूले घरी छोट दिवा
घबेने ? क्या कहीं दुनिया में, लंक में, दरवाक में दोरत घबेने र
यो है ? औरत क्या घबेनी रहने की बिना के दिगरो है ! बग मु
को झुन लो। ओ प्यारे,

हृदय, घोरज घर । संयोग-वियोग तो दुनिया के धन्दे हैं,
 ढोर बन घघर्मी !... दूर रहो सब, दूर रहो । मुझे छूना
 नुमने दो इस भूमि को । साजन भा रहे हैं भाज । हाँ बेटा !
 उन्हें ले जाएँ । फिर उन्हें विदा भी करना होगा । मैं प्रभा-
 ती क्या सकती हूँ ? उन्हें जाना होगा, मुझे रहना होगा ।
 उ ! चलो मेरे साथ !

रहा है :

साज गजनवा की साथ ।

उपर धोरी धजहुँ है जारी ।

भाज ० ।

साज-समाज पिया ले जाए,

लाए कहरवा चार ।

कदिया किनारे बालम मोरा रसिया,

देत घुघट पट कार ।

साज गजनवा की साथ ।

उपर धोरी धजहुँ है जारी ।

